चार अध्याय

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

श्री धन्यकुमार जैन

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

अग्रहायण १३४१ बँगला संवत् (सन् १९३४)

चार अध्याय

द्वितीय संस्करण — — — आश्विन, २००४

मूल्य १॥)

Printed & Published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad.

चार अध्याय

भूमिका

एला को याद पड़ता है, उसके जीवन का प्रारम्भ विद्रोह में से हुआ था। उसकी मा मायामयी के स्वभाव में कुछ सनक-सी थी, उनका व्यवहार विचार-विवेचना के प्रशस्त पथ पर नहीं चल पाता था। अपने बेहिसाबी मिजाज के असंयत झोंकों से अपनी गृहस्थी को वे आये-दिन क्षुब्ध कर डाला करती थीं,—अन्याय के साथ शासन करतीं और बिना-कारण सन्देह करतीं। लड़की जब किसी अपराध को मंजूर करती, तो वे चट से कह बैठतीं—झूठ बोल रही है। और लड़की का यह हाल था कि बिना मिलावट के शुद्ध सच कहने का उसे व्यसन-सा पड़ गया था। इसलिए उसी को सबसे ज्यादा सजा मिली। सब तरह के अन्याय के विरुद्ध असहिष्णुता उसके स्वभाव में प्रबल हो उठी। उसकी मा ने समझा कि यह बात स्त्री-धर्मनीति के विरुद्ध है।

एक बात उसने बचपन ही से समझ ली थी कि दुर्बलता अत्याचार का प्रधान वाहन है। उसके परिवार में जितने भी आश्रित अन्नजीवी थे, जो पराये अनुग्रह-निग्रह के संकीर्ण घेरे में निःसहाय रूप से आबद्ध थे, उन्हीं लोगों ने उसके परिवार की आबहवा को कलुषित किया है, उन्हीं लोगों ने उसकी मा की अन्ध प्रभुत्व-चर्चा

को बाधाहीन कर डाला है। इस अस्वास्थ्यकर अवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में ही उसके मन में छोटी उमर से ही स्वाधीनता की आकांक्षा इतनी दुर्दमनीय हो उठी थी।

एला के पिता नरेशचन्द्र गुप्त विलायत जाकर वहाँ के विश्वविद्यालय से साइकॉलॉजी में डिग्री हासिल कर लाये हैं। उनकी वैज्ञानिक विचारशक्ति तीक्ष्ण है, अध्यापन-कार्य में वे विशेषरूप से यशस्वी हैं। प्रान्तीय प्राइवेट कालेज में वे काम करते हैं, क्योंकि उसी प्रान्त में उनका जन्म है; गार्हस्थिक उन्नति की तरफ उनका लोभ कम है और उस विषय में दक्षता भी साधारण है। गलती से आदमी पर विश्वास करके अपनी हानि कर लेते हैं, बार-बार अनुभव होने पर भी इस बात का वे सुधार न कर सके। ठगकर या आसानी से जो उपकार वसूल करते हैं, उनकी कृतघ्नता सबसे बढ़कर अकरुण होती है। जब वह प्रकट हो जाती, तो वे उसे मनस्तत्त्व का विशेष तथ्य समझकर अनायास ही स्वीकार कर लेते हैं, मन या मुँह से शिकायत नहीं करते। सांसारिक बुद्धि की त्रुटियों के लिए कभी उन्हें स्त्री से क्षमा नहीं मिली, हमेशा उलाहने ही सहे हैं। शिकायत के कारण पुराने हो जाने पर भी उनकी स्त्री उन्हें कभी भूलती ही न थीं, जब-है-तब उन्हीं बातों की तेज सुई चुभो-चुभोकर उन्हें जरा भी दम न लेने देतीं।

मनुष्य पर अपने सहज-विश्वास और उदारता के कारण पिता को बार-बार ठगाते और दुःख पाते देख उन पर एला का सदा-व्यथित स्नेह था—जैसा सकरुण स्नेह मा का अपने नासमझ बच्चे पर होता है। सबसे बढ़कर उसे चोट पहुँचती थी तब, जब उसकी मा कलह की भाषा में तीव्र इशारा करती थीं कि बुद्धि-विवेचना में वे अपने पति से श्रेष्ठ हैं। एला ने अनेक अवसरों पर मा के द्वारा पिता का असम्मान देखा है, यहाँ तक कि कभी-कभी उसके निष्फल क्रोधावेश में आँसुओं से रात को उसका तकिया तक भींग गया

है। इस तरह के अति के धैर्य को अन्याय समझकर एला ने बहुत बार अपने पिता को मन-ही-मन अपराधी ठहराया है।

अत्यन्त दुःखित हो, एक दिन एला ने अपने पिता से कहा— "इस तरह चुपचाप अन्याय सह लेना ही अन्याय है।"

नरेश ने कहा—"स्वभाव के विरुद्ध प्रतिवाद करना और गरम लोहे पर हाथ फेरकर उसे ठंडा करना, दोनों एक ही बात है, एला। इसमें वीरता हो सकती है, पर आराम नहीं।"

"चुप बने रहने में आराम और भी कम है"—कहकर एला जल्दी से चली गई।

इधर घर में एला देखती है कि जो मा का मन रखकर चलने का कौशल जानते हैं, उनके षड्यन्त्र से निरपराधी पर ही निष्ठुर अन्याय हुआ करता है। एला से सहा नहीं जाता, उत्तेजित होकर वह न्यायकारिणी के सामने सत्य प्रमाण रखती है। परन्तु कर्तव्य के अहंकार के सामने अकाट्य युक्ति ही दुःसह स्पर्द्धा है। अनुकूल तूफानी हवा की तरह वह न्याय की नाव को आगे नहीं बढ़ाती, बल्कि उसे डुबाने के उन्मुख कर देती है।

इस परिवार में और भी एक बला थी, जो एला के मन को हमेशा चोट पहुँचाया करती। वह है उसकी मा की छूत की सनक। एक दिन किसी मुसलमान अभ्यागत के बैठने के लिए एला ने चटाई बिछा दी थी,—उस चटाई को मा ने फेंक दिया; ऊनी गलीचा बिछा देती तो कोई बात न थी। एला का तार्किक मन बिना तर्क किये मानता नहीं। एक दिन उसने पिता से पूछा—"अच्छा, यह सब छुआछूत और नहाने-धोने की सनक स्त्रियों पर ही क्यों इतनी हावी होती है? इसमें हृदय का तो स्थान ही नहीं, बल्कि विरोध है,—यह तो सिर्फ मशीन की तरह अन्धा होकर चलना है।"

मनोविज्ञान के विशेषज्ञ पिता ने कहा—"स्त्रियों के मन में हजारों वर्षों से हथकड़ियाँ पड़ी हुई हैं; वे तो मानती ही जायँगी,

प्रश्न नहीं करेंगी,—इसी बात पर उन्हें समाज-मालिकों से इनाम मिले हैं; इसी से मानकर चलना जितना ज्यादा अन्धा होता है, उसकी कीमत उनके लिए उतनी ही बढ़ जाती है। जनाने मर्दों की भी यही दशा है।" आचार की निरर्थकता के बारे में बार-बार मा से प्रश्न किये बिना एला से रहा नहीं गया। उत्तर में उसे बार-बार फटकार ही मिली है। लगातार ऐसी चोटों से एला का मन अबाध्यता की ओर झुक गया है।

नरेश ने देखा कि इन सब पारिवारिक द्वन्द्वों से लड़की का स्वास्थ्य बिगड़ रहा है, इससे उन्हें गहरी चोट पहुँची। इतने में एक दिन एला ने, किसी विशेष अन्याय से कठोर रूप से आहत होकर, पिता के पास आकर कहा—"बाबूजी, मुझे कलकत्ते के किसी बोर्डिङ्ग में भेज दो।"

यह प्रस्ताव दोनों के लिए दुःखदायक था, परन्तु पिता ने अवस्था समझ ली और मायामयी की ओर से प्रतिकूल झंझाघात होते हुए भी एला को दूर भेज दिया; और फिर अपनी निष्करुण गृहस्थी और अध्ययन-अध्यापन में निमग्न हो गये।

मा ने कहा—"शहर में भेजकर लड़की को मेम साहब बनाना चाहते हो तो बना डालो; पर तुम्हारी लाड़ली लड़की जब ससुराल जायगी, तब उसकी जान पर आ पड़ेगी। तब फिर मुझे दोष मत देना।" लड़की के व्यवहार में कलिकालोचित स्वाधीनता के कुलक्षण देखकर उसकी मा ने ऐसी आशंका बार-बार प्रकट की है। एला अपनी भावी सासु के हाड़ जलायेगी, इस सम्भावना को निश्चित जानकर उस काल्पनिक समधिन के प्रति उनकी अनुकम्पा मुखरित हो उठती थी। इसी से एला के मन में यह धारणा दृढ़ हो चली थी कि ब्याह के लिए लड़कियों को तैयार होना पड़ता है अपने आत्म-सम्मान को पंगु बनाकर, इसके लिए उन्हें न्याय-अन्याय के ज्ञान को भी मिटा देना पड़ता है।

एला ने जब मैट्रिक पार होकर कालेज में प्रवेश किया, तब उसकी मा की मृत्यु हो गई। नरेश ने बीच-बीच में विवाह के प्रस्ताव पर लड़की को राजी करने की काफी कोशिश की थी, पर वे उसे राजी न कर सके। एला अपूर्व सुन्दरी है, पात्रों की तरफ से प्रार्थनाओं की कमी न थी, किन्तु विवाह के प्रति विमुखता उसके संस्कारों में समा गई थी। लड़की ने परीक्षाएँ पास कर लीं, किन्तु पिता उसे अविवाहित छोड़कर ही मर गये।

सुरेश था उनका छोटा भाई। नरेश ने अपने इस भाई को पाल-पोसकर बड़ा किया था, और अन्त तक अपने खर्च से पढ़ाया भी। दो वर्ष के लिए उसे विलायत भेजकर उन्हें स्त्री से लांछित होना पड़ा और महाजन का कर्जदार भी बनना पड़ा। सुरेश इस समय डाक-विभाग में ऊँचे पद पर काम करता है। अपने काम के लिए उसे नाना प्रदेशों में घूमना पड़ता है। अब उसी पर एला का भार आ पड़ा। यह भार उसने हृदय से ही अंगीकार किया।

सुरेश की स्त्री का नाम है माधवी। वह जिस परिवार की लड़की है, उस परिवार में लड़कियों को परिमित पढ़ाना-लिखाना ही प्रचलित है; उसका परिमाण बीच के माप से कम ही है, ज्यादा नहीं। विलायत से लौटने के बाद पति जब ऊँचे पद पर नियुक्त हुए, तो उन्हें दूर-दूर घूमने-फिरने का काम पड़ने लगा, और तब उनके लिए बाहर के अनेक लोगों के साथ सामाजिकता निभाना अनिवार्य हो उठा। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद माधवी निमन्त्रण-आमन्त्रणों में विजातीय लौकिकता पालन करने में अभ्यस्त हो गई। यहाँ तक कि गोरों के क्लब में भी वह अपनी पंगु अँगरेजी भाषा को, सकारण और अकारण हँसी के द्वारा पूरा करके, काम चला लिया करती थी।

इतने में, सुरेश जब किसी प्रान्त के बड़े शहर में रह रहे थे, एला उनके घर रहने लगी। उसके रूप, गुण और विद्या ने चाचा

के मन में गर्व का संचार कर दिया। वे अपने ऊपरवालों, सह-कर्मियों तथा देशी और विलायती मिलनेवालों के सामने एला को प्रकट करने के लिए व्यग्र हो उठे। एला की स्त्री-बुद्धि इस बात को ताड़ गई कि इसका फल अच्छा नहीं हो रहा। माधवी झूठे आराम का बहाना करके क्षण-क्षण में कहने लगी—"मेरी तो जान बची—विलायती कायदे की सामाजिकता का बोझ मुझ पर क्यों लादना झूठमूठ को! न तो मुझमें उतनी विद्या है और न बुद्धि।" रंग-ढंग देखकर एला ने अपने चारों तरफ एक जनानखाना-सा खड़ा कर डाला। सुरेश की लड़की सुरमा को पढ़ाने का भार उसने अतिरिक्त उत्साह के साथ अपने ऊपर ले लिया। और बाकी का समय उसने लगा दिया एक थीसिस लिखने में। उसका विषय था—बँगला मंगलकाव्य और चासर के काव्य की तुलना। इस विषय को लेकर सुरेश भी बहुत उत्साहित हुए। इस समाचार का उन्होंने चारों ओर प्रचार करना शुरू कर दिया। माधवी ने मुँह बनाकर कहा—"अति अच्छी नहीं होती।"

पति से कहा—"चट से लड़की को एला से पढ़वाना शुरू कर दिया! क्यों, अधर मास्टर ने क्या कसूर किया था? कुछ भी कहो तुम, पर मैं—"

सुरेश दंग रह गये, बोले—"क्या कहती हो तुम! एला के साथ अधर की तुलना! हुँः।"

"दो चार नोट्स की किताबें रटकर पास कर लेने से ही विद्या नहीं आ जाती!"—कहकर गरदन टेढ़ी करके माधवी कमरे से बाहर चली गई।

एक बात वह पति से कहना चाहती है; पर बात ओठों तक आकर रुक जाती है—'सुरमा की उमर तेरह पार हो चली, आज नहीं तो कल लड़का ढूँढ़ने के लिए देश भर में दौड़-धूप करनी पड़ेगी, तब एला सुरमा के पास रहेगी तो...। आजकल के लड़कों

की आँखों में जैसा फीके रंग का नशा रहता है, वे क्या जानें कि सुन्दरता किसे कहते हैं ?' गहरी साँसें भरती और सोचती—ये सब बातें उनसे कहना ही फिजूल है, घर-गृहस्थी के मामलों में पुरुष अन्धे ही होते हैं।

माधवी इस कोशिश में लग गई कि जितनी जल्दी हो सके, एला का ब्याह हो जाय। ज्यादा कोशिश भी नहीं करनी पड़ी, अच्छे-अच्छे लड़के आप ही आ-आकर जुटने लगे—ऐसे लड़के कि सुरमा के साथ सगाई करने को माधवी का मन ललचाने लगा। और एला उन्हें बार-बार निराश करके लौटा देती।

भतीजी की इस जिद्-भरी नासमझी से सुरेश उद्विग्न हो उठे, और चाची को भी अत्यन्त असह्य हो उठा। वे जानती हैं कि समर्थ उमर की लड़की के लिए अच्छे वर की उपेक्षा करना अपराध है। वयसोचित नाना प्रकार की दुर्घटनाओं की आशंका करने लगीं, और अपनी जिम्मेवारी को समझकर उनका हृदय व्यथित होने लगा। एला साफ समझ गई कि अब वह अपने चाचा के स्नेह के साथ उनकी गृहस्थी का द्वन्द्व कराने बैठी है।

ठीक इसी समय इन्द्रनाथ आ पहुँचे उस शहर में। देश का विद्यार्थी-समाज उन्हें राज-चक्रवर्ती के समान मानता था। उनमें असाधारण तेज था, और विद्या की ख्याति भी बहुत जबरदस्त थी। एक दिन सुरेश के घर उनका निमन्त्रण हुआ। उस दिन किसी एक मौके से एला ने, परिचय न होने पर भी, बिना किसी संकोच के उनके पास आकर कहा—"मुझे आप अपना कोई काम नहीं दे सकते ?"

आजकल के दिनों में इस तरह का आवेदन कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं, परन्तु फिर भी इस लड़की की दीप्ति देखकर इन्द्रनाथ चौंक पड़े। उन्होंने कहा—"कलकत्ते में अभी हाल ही में

लड़कियों के लिए 'नारायणी हाई स्कूल' खोला गया है। तुम्हें उसका संचालन-भार दे सकता हूँ, तैयार हो?"

"तैयार हूँ, अगर आप विश्वास करें।"

इन्द्रनाथ ने एला के चेहरे पर अपनी उज्ज्वल दृष्टि रखते हुए कहा—"मैं आदमी पहचानता हूँ। तुम पर विश्वास करने में मुझे एक क्षण की भी देर नहीं लगी। तुम्हें देखते ही समझ गया, तुम नवयुग की दूती हो—नवयुग का आह्वान है तुममें।"

सहसा इन्द्रनाथ के मुँह से ऐसी बात सुनकर एला के हृदय में कम्पन-सा आ गया।

उसने कहा—"आपकी बातों से मुझे डर लगता है। गलती से मुझे ऊँचा न चढ़ाइए। आपकी धारणा के योग्य बनने के लिए दु:साध्य चेष्टा करूँगी, तो मैं टूट जाऊँगी। अपनी शक्ति की सीमा के भीतर जहाँ तक हो सकेगा, आपके आदर्श की रक्षा करती रहूँगी, मगर अपने को वैसा समझ न सकूँगी।"

इन्द्रनाथ ने कहा—"गृहस्थी के बन्धन में कभी न बँधोगी, यह प्रतिज्ञा तुम्हें करनी पड़ेगी। तुम समाज की नहीं हो, तुम देश की हो।"

एला ने सिर उठाकर कहा—"यही प्रतीज्ञा है मेरी।"

चाचा ने गमलोचित एला से कहा—"तुझसे अब कभी ब्याह के लिए न कहूँगा। तू मेरे ही पास रह। यहीं पर, मुहल्ले की लड़कियों का भार लेकर एक छोटा-मोटा क्लास खोलने में हर्ज क्या है?"

चाची ने स्नेहार्द्र पति की इस नासमझी से नाखुश होकर कहा—"अब वह बड़ी हो चुकी, अपनी जिम्मेदारी अपने ही ऊपर लेना चाहती है, यह तो अच्छी ही बात है। तुम बीच में पड़कर रुकावट क्यों डालते हो? तुम मन में चाहे जो कुछ समझो, पर मैं पहले से कहे देती हूँ, उसकी फिकर मैं नहीं रख सकती।"

एला ने खूब दृढ़ता के साथ कहा—"मुझे काम मिल गया है, मैं काम करने ही जाऊँगी।"

एला काम करने ही चली गई।

इस भूमिका के बाद पाँच वर्ष बीत गये, अब कहानी बहुत दूर पहुँच चुकी है।

पहला अध्याय

दृश्य—चाय की दूकान। उसके पास ही एक छोटा-सा घर है। उस घर में बिक्री के लिए कुछ स्कूल-कालेज की पाठ्य-पुस्तकें सजी हुई हैं, अधिकांश सेकेण्ड हैण्ड। कुछ हैं यूरोपीय आधुनिक कहानी-नाटकों के अँगरेजी अनुवाद। उन्हें गरीब-घर के लड़के पन्ने उलट-पुलटकर चले जाते हैं। दूकानदार कुछ आपत्ति नहीं करता। दूकान के मालिक हैं कन्हाईलाल गुप्त, पुलिस के पेन्शन-याफ्ता पुराने सब-इन्स्पेक्टर।

सामने बड़ी सड़क है, बाईं बगल से एक छोटी-सी गली चली गई है। जो एकान्त में बैठकर चाय पीना चाहते हैं, उनके लिए उसी कमरे में एक तरफ फटे-पुराने टाट का पर्दा लगाकर अलग व्यवस्था कर दी गई है। आज उसी तरफ किसी विशेष आयोजन के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। स्टूल-चौकियों की कमी दूर करने के लिए दार्जिलिंग-टी-कम्पनी के मार्केदार बक्स डाल दिये गये हैं। चाय के पात्रों में भी अनिवार्य असमानता है; उनमें से कुछ तो नीले रङ्ग के एनामेल के हैं और कुछ सफेद चीनी-मिट्टी के। टेबिल पर हैण्डिल टूटे दूध के जग में फूलों का गुलदस्ता है। दिन के करीब तीन बजे होंगे। लड़कों ने एलालता को निमन्त्रण का समय दिया था ठीक ढाई बजे। कहा था, एक मिनट भी पिछड़ जाओगी तो काम न चलेगा। असमय में निमन्त्रण दिया गया था, क्योंकि उसी समय दूकान सूनी रहती है। चाय-पिपासुओं की भीड़ लगती है साढ़े-चार बजे के बाद। एला ठीक समय पर ही उपस्थित हुई थी। पर लड़कों में से एक का भी पता नहीं। इसी से अकेली बैठी सोच रही थी—तो क्या तारीख सुनने में गलती हो गई! इतने में

इन्द्रनाथ को घुसते देख वह चौंक पड़ी। इस जगह उनके आने की आशा किसी भी तरह नहीं की जा सकती।

इन्द्रनाथ ने यूरोप में बहुत दिन बिताये हैं, और सायन्स में उन्होंने काफी ख्याति भी प्राप्त की है। काफी ऊँचे पद पर पहुँचने का उन्हें अधिकार था, क्योंकि यूरोपीय अध्यापकों के प्रशंसापत्र थे उदार भाषा में। यूरोप में रहते हुए किसी एक बदनाम भारतीय राजनीतिक के साथ कदाचित् उनकी भेंट-मुलाकात हो गई थी, इसी से देश में आते ही उनके सभी कामों में बाधा पहुँचने लगी। अन्त में इँग्लैण्ड के किसी ख्यातनामा विज्ञानाचार्य की विशेष सिफारिश से उन्हें अध्यापकी का काम मिला भी, तो वह अयोग्य अधिकारी के अधीन। अयोग्यता के साथ ईर्ष्या होती है प्रखर, इसी से उनकी वैज्ञानिक गवेषणा की चेष्टा अधिकारियों द्वारा पद-पद पर बाधा पाने लगी। अन्त में उन्हें ऐसी जगह स्थानान्तरित होना पड़ा, जहाँ लैबॉरेटरी तक नहीं। उन्होंने समझ लिया कि इस देश में उनके लिए जीवन के सर्वोच्च अध्यवसाय का मार्ग बन्द है। औरों की तरह एक ही प्रदक्षिणा-मार्ग से अध्यापना का चिराभ्यस्त पहिया घुमाते हुए अन्त में थोड़ी सी पेन्शन के सहारे जीवन समाप्त करें, अपनी इस दुर्गति की आशंका को वे किसी भी तरह स्वीकार न कर सके। वे निश्चित जानते थे कि दूसरे किसी भी देश में सम्मान प्राप्त करने की शक्ति उनमें काफी थी।

एक दिन इन्द्रनाथ ने जर्मन और फरासीसी भाषा सिखाने का एक प्राइवेट क्लास खोल दिया, और साथ ही भार लिया उद्भिज्ज-शास्त्र और भूतत्व में कालेज के छात्रों को सहायता पहुँचाने का। क्रमशः इस छोटे से अनुष्ठान की गुप्त सुरंग से एक अप्रकाश्य साधना की जटिल जड़ें जेलखानों के आँगनों में होकर बहुत दूर तक फैल गईं।

इन्द्रनाथ ने पूछा—"एला, तुम यहाँ ?"

1309

एला ने कहा—"आपने मेरे घर जाने की उन लोगों से मनाही कर दी है, इसलिए लड़कों ने मुझे यहीं बुलाया है।"

"इसकी खबर मुझे पहले ही से मिल गई थी। खबर मिलते ही मैंने उन लोगों को अन्यत्र जरूरी काम से लगा दिया। उन सबकी तरफ से मैं ऐपोलौजी (माफी) माँगने आया हूँ। बिल भी चुका दूँगा।"

"क्यों आपने मेरा निमन्त्रण बिगाड़ दिया?"

"लड़कों के साथ तुम्हारा सहृदयता का सम्बन्ध है, इस बात को दबा देने के लिए। कल देख लेना,—तुम्हारे नाम से एक निबन्ध अखबार में भेज दिया है।"

"आपने लिखा है? आपकी कलम से निकली चीज फर्जी नाम से नहीं चल सकती; लोग उसे अकृत्रिम समझ के विश्वास नहीं करेंगे।"

"बायें हाथ से कच्ची लिखावट लिखी है; बुद्धि का परिचय भी नहीं है, सदुपदेश है।"

"कैसा?"

"तुम लिख रही हो,—लड़के अकाल जागरण से देश को मारे डाल रहे हैं। नारी-समाज से तुम्हारी सकरुण अपील है कि वे इन अभागों का दिमाग ठंडा करें। लिखा है,—दूर से तिरस्कार करने से तुम्हारी आवाज उनके कानों तक न पहुँचेगी। उनके बीच में जा पड़ना होगा, जहाँ उनके नशे का अड्डा है। शासनकर्ताओं को सन्देह हो सकता है, सो होने दो। कह रही हो,—तुम मा की जाति हो; उनका दंड स्वयं अंगीकार करके भी यदि तुम उनकी रक्षा कर सकीं, तो वह मरण भी सार्थक होगा। आजकल सर्वदा ही हम कहा करती हैं कि हम मातृजाति हैं,—ये सब बातें आँसुओं से भिगोकर लेख में धर दी हैं। मातृ-वत्सल पाठकों की आँखों में आँसू आ जायँगे। अगर तुम पुरुष होतीं, तो इसके बाद

फिर तुम्हारे लिए रायबहादुर की पदवी मिलना असम्भव न रह जाता।"

"आपने जो कुछ लिखा है, वह कतई मेरी बात हो ही नहीं सकती, ऐसा तो मैं नहीं कहूँगी। इन सत्यानाशी लड़कों से मेरा प्रेम है,—ऐसे लड़के हैं कहाँ? एक दिन उनके साथ मैं कालेज में पढ़ी हूँ। पहले-पहल वे मेरे नाम से बोर्ड पर अंट-संट बातें लिखा करते थे,—पीछे से 'छोटी इलायची' कहकर चिल्लाते और तुरन्त ही भलेमानसों की तरह आसमान की ओर देखने लगते थे। फोर्थ-ईयर में मेरी एक सहेली पढ़ती थी इन्द्राणी—उसे कहा करते थे 'बड़ी इलायची'। वह बेचारी देखने में कुछ लम्बी थी, रंग भी साफ न था। इन सब छोटे-मोटे उपद्रवों से बहुत-सी लड़कियाँ नाराज हो जाया करती थीं, मगर मैं लड़कों का ही पक्ष लिया करती थी। मैं जानती थी कि हम उनकी आँखों के लिए अनभ्यस्त हैं, इसी से उनका व्यवहार बेसलीके का होता है—कभी-कभी भद्दा भी हो जाता है, परन्तु वह स्वाभाविक नहीं है। जब अभ्यास हो गया तो स्वर अपने-आप ही सहज-स्वाभाविक हो गया। छोटी इलायची हो गई एला जीजी। बीच-बीच में कभी किसी के स्वर में मधुर रस भी आया है,—और आयेगा क्यों नहीं? पर मैं कभी उससे डरी नहीं। मैंने अपने अनुभव से देखा है कि लड़कों के साथ सलूक करना बहुत ही सहज है, अगर लड़कियाँ ज्ञात या अज्ञात-रूप से उनके साथ आखेट का खेल खेलने की कोशिश न करें। उसके बाद एक-एक करके देखा कि उनमें जो सबसे अच्छे थे, जिनमें नीचता नहीं थी, जिनमें स्त्रियों के प्रति पुरुषोचित सम्मान—"

"अर्थात् कलकत्ते के रसिक लड़कों की तरह जिनमें रस गाँजने नहीं लगा था—"

हाँ, वे ही, दौड़ने लगे मृत्यु-दूत के पीछे-पीछे हथेली पर जान

रखे, उनमें से लगभग सभी मेरी ही तरह गँवार थे। वे ही अगर मरने को दौड़ें, तो मैं नहीं चाहती घर के कोने में जिन्दा रहना। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं, हमारा उद्देश्य उद्देश्य न होकर नशा होता जा रहा है। हमारे काम करने की पद्धति मानो अपनी बेताल-धुन से चली जा रही है विचारशक्ति के बाहर। अच्छा नहीं लगता। ऐसे-ऐसे लड़कों की किस अन्धशक्ति के सामने बलि दी जा रही है! मेरी तो छाती फटती है।"

"वत्से, यह जो धिक्कार है, यही तो कुरुक्षेत्र की उपक्रमणिका है। अर्जुन के मन में भी क्षोभ उत्पन्न हुआ था। मैं डाक्टरी सीखते समय शुरू शुरू में मुरदे चीरते-चीरते मारे घृणा के मूर्छित हो जाया करता था। वह घृणा ही घृणा के योग्य है। शक्ति के प्रारम्भ में निष्ठुर की साधन है, अन्त में शायद क्षमा हो। तुम लोग कहा करती हो—स्त्रियाँ मा की जाति हैं, यह कोई गौरव की बात नहीं। मा तो प्रकृति के हाथ से स्वतः ही बनी हुई हैं। जन्तु-जानवर भी उससे नहीं बच पाये। उससे भी बड़ी बात यह है कि तुम शक्ति-रूपिणी हो, इसी बात को प्रमाणित करना होगा—दया-माया के दलदल को पार करके कड़ी जमीन पर। शक्ति दो, पुरुषों को शक्ति दो।"

"ये सब बड़ी-बड़ी बातें कहकर आप बहका रहे हैं हम लोगों को। हम जो असल में हैं, उससे बहुत ज्यादा आप दावा करते हैं। इतना सहन न होगा।"

"दावे के जोर से ही दावा सत्य होता है। तुम लोगों को हम जैसा विश्वास करते रहेंगे, तुम वैसी ही होती रहोगी। तुम लोग भी उसी तरह हम पर विश्वास करो, जिससे हमारी साधना सत्य हो।"

"आपसे बातें कहलाना मुझे अच्छा लगता है, पर अभी नहीं। मैं खुद कुछ कहना चाहती हूँ।"

"अच्छा ! तो यहाँ नहीं, चलो उस पीछेवाले कमरे में ।"

परदा लगे अँधेरे-से कमरे में दोनों चले गये । वहाँ एक पुरानी टेबिल थी और उसके दोनों तरफ दो बेन्चें; दीवार पर एक बड़े साइज़ का भारतवर्ष का मैप टँगा था ।

"आपने एक अन्याय किया है—यह बात बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता ।"

इन्द्रनाथ को इस तरह कहना, सिर्फ एला का ही काम है । फिर भी उसके लिए यह सहज नहीं था, इसी से उसे अपने गले पर अस्वाभाविक जोर देना पड़ा ।

इन्द्रनाथ के लिए सिर्फ इतना ही कहना कि वे देखने में अच्छे हैं, पूरा कहना नहीं होगा । उनके चेहरे पर एक कठिन आकर्षण-शक्ति है । मानो उनके सुदूर अन्तःकरण में एक वज्र बँधा है, जिसका गर्जन नहीं सुनाई देता, हाँ, उसकी निष्ठुर दीप्ति बीच-बीच में तेजी से निकली पड़ती है । चेहरे के भाव में मँजी-गसी भद्रता है, पैनाई हुई छुरी की तरह । कड़ी बात कहने में कोई हिचक नहीं, पर हँस के बोलते हैं; गले का स्वर गुस्से में भी ऊँचा नहीं चढ़ता, गुस्सा प्रकट होता है हँसी में । जितनी सफाई से मर्यादा की रक्षा होती है, उतनी कभी भूलते नहीं और उसका अतिक्रम भी नहीं होता । सिर के बाल कम छँटे हुए हैं, पर सम्हाले बिना सिलसिला बिगड़ने का कोई डर नहीं । चेहरे का रङ्ग है बादामी, ललाई लिये हुए । भौंहों के ऊपर प्रशस्त तना हुआ ललाट है, दृष्टि में कठिन बुद्धि की तीक्ष्णता है, ओठों पर अविचलित संकल्प और प्रभुत्व के गौरव की झलक है । अत्यन्त दुःसाध्य ढंग का दावा वे अनायास ही कर सकते हैं, जानते हैं कि वह दावा सहज में खारिज नहीं हो सकता । कोई जानता है कि उनकी बुद्धि असाधारण है, और कोई समझता है कि उनकी शक्ति अलौकिक है । इसके सिवा किसी में सीमाहीन श्रद्धा है तो किसी में अकारण भय ।

इन्द्रनाथ ने मुसकराते हुए कहा—"कौन सा अन्याय ?"

"उमा को आपने ब्याह करने की आज्ञा दी है, पर वह तो ब्याह करना नहीं चाहती।"

"कौन कहता है, नहीं चाहती ?"

"वह खुद ही कहती है।"

"हो सकता है कि वह खुद ठीक नहीं जानती हो, या ठीक बताती न हो।"

"उसने आपके सामने प्रतिज्ञा की थी व्याह न करने की।"

"तब थी वह सत्य, अब सत्य नहीं रही। मुँह की बात से सत्य की सृष्टि नहीं की जा सकती। प्रतिज्ञा तो उमा स्वयं ही तोड़ देती,—मैंने तुड़वा दी, उसका अपराध बचा दिया।"

"प्रतिज्ञा पूरी न करने की जिम्मेदारी उसी की है, या तो वह उसे तोड़ती या अपराध करती।"

"तोड़ते-तोड़ते आस-पास बहुत ज्यादा तोड़-फोड़ देती, उसमें हम सभी का नुकसान होता।"

"मगर वह जो बहुत रो-धो रही है।"

"तो फिर रोने-धोने के दिन और न बढ़ने दूँगा—कल-परसों क भीतर ही ब्याह कर-करा दिया जायगा।"

"कल-परसों के बाद भी तो उसका सारा जीवन पड़ा हुआ है।"

"लड़कियों का ब्याह से पहले का रोना 'प्रभाते मेघा-डम्बरम्' है।"

"आप बड़े निष्ठुर हैं।"

"क्योंकि मनुष्य पर जिस विधाता का प्रेम है, वह स्वयं निष्ठुर है, जानवर को ही वह प्रश्रय देता है।"

"आप जानते हैं, उमा सुकुमार से प्रेम करती है !"

"इसी से उसे अलग करना चाहता हूँ।"

"प्रेम की सजा ?"

"प्रेम की सजा के कुछ मानी नहीं होते। ऐसे तो चेचक होना भी एक सजा है,—मगर गोटी निकल आने पर उसे घर से निकालकर अस्पताल भेज देना ही ठीक है।"

"सुकुमार के साथ ब्याह हो जाए तो ठीक है।"

"मगर सुकुमार ने तो कोई कसूर नहीं किया। वैसे लड़के और हैं कितने ?"

"वह अगर स्वयं ही उमा से ब्याह करने को राजी हो जाय ?"

"असम्भव नहीं। इसी से तो इतनी जल्दी पड़ी है। उस सरीखे उच्च श्रेणी के पुरुष के मन में विभ्रम ला देना लड़कियों के लिए बहुत आसान है;—सुकुमार के सामने दो बूँद आँसू टपकाकर सौजन्य को प्रश्रय साबित किया जा सकता है। सुनकर नाराज हो रही हो ?"

"नाराज क्यों होने लगी ? मेरे अनुभव में ऐसी घटनाओं की कमी नहीं कि स्त्रियों की निपुणता ने बढ़ावा दिया है और उसका दायित्व उठाना पड़ा है पुरुष को। अब समय आ गया सत्य के अनुरोध से न्याय-अन्याय विचार करने का। मैं ऐसा किया करती हूँ, इसी से तो लड़कियाँ मुझे देख नहीं सकतीं। जिसके साथ उमा के ब्याह का हुक्म हुआ है, उस भोगीलाल का क्या मत है ?"

"उस निष्कंटक भलेमानस के मतामत की कोई बला ही नहीं। भारत की लड़की-मात्र को वह विधाता की अपूर्व सृष्टि समझता है। ऐसे मुग्ध-स्वभावी लड़के को दल से अलग कर देना ही ठीक है। कूड़ा-करकट फेंकने की सबसे अच्छी डलिया है ब्याह।"

"इन सब उत्पातों की आशका होते हुए भी आपने स्त्री-पुरुषों को एकत्र क्यों किया ?"

"जिस संन्यासी ने शरीर पर भस्म रमाई है और जिस भस्म-कुंड ने प्रवृत्तियों को भस्म कर दिया है, उन क्लीवों से काम नहीं होगा। इसलिए जब देखूँगा कि हमारे दल का कोई अग्नि-उपासक असावधानी से अपने ही अन्दर आग लगाना चाहता है—चट से हटा दूँगा उसे। हमारी आग देश-भर में व्याप्त है, बुझे हुए दिल से वह नहीं जल सकती, और उनके जरिये भी कुछ नहीं हो सकता जो आग को दबाना नहीं जानते।"

एला गम्भीर मुँह बनाये बैठी रही। कुछ देर बाद आँखें नीची करके बोली—"तो मुझे आप छोड़ दीजिये।"

"इतनी क्षति करने को क्यों कहती हो?"

"आप जानते नहीं।"

"कौन कहता है, नहीं जानता? देखा है मैंने तुम्हारे खद्दर में कुछ-कुछ रङ्ग आने लगा है। जान लिया कि हृदय में अरुणोदय हो गया। मैं समझ सकता हूँ कि किसी एक के पैरों की आहट की प्रत्याशा में तुम्हारे कान बिछे हुए हैं। पिछले शुक्रवार को जब मैं तुम्हारे घर गया था, तुमने सोचा था कि कोई और है। देखा कि मन को ठीक कर लेने में तुम्हें कुछ समय लगा। शरमाओ मत, एला, इसमें असंगत कोई बात नहीं।"

कान सुर्ख हो गये एला के, चुपचाप बैठी रही।

इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम किसी को प्यार करती हो, यही तो? तुम्हारा मन तो जड़ पत्थर का बना नहीं है। जिसे प्यार करती हो, उसे भी जानता हूँ। पश्चात्ताप का कारण तो इसमें कुछ भी नहीं देखता।"

"आपने कहा था कि एकाग्र-चित्त से काम करना होगा। हर एक हालत में वैसा नहीं भी हो सकता है।"

"सबके लिए नहीं। परन्तु प्रेम के भारी भार से तुम अपना व्रत डुबो दोगी, ऐसी लड़की तुम नहीं हो।"

"मगर—"

"इसमें मगर कुछ भी नहीं—तुम किसी भी हालत में छुटकारा नहीं पा सकतीं।"

"मैं तो आप लोगों के किसी काम में नहीं आती, यह तो आप जानते ही हैं।"

"तुमसे मैं काम नहीं चाहता, काम की सब बातें तुमसे कहता भी नहीं। तुम स्वयं कैसे समझ सकती हो कि तुम्हारे हाथ का रक्त चन्दन का टीका लड़कों के मन में कैसी आग लगा देता है! उसे बाद देकर सिर्फ सूखी तनख्वाह पर काम कराने से तुमसे पूरा काम नहीं मिल सकता। हम कामिनी-कांचन के त्यागी नहीं हैं। जहाँ कांचन का प्रभाव है वहाँ कांचन की मैं अवज्ञा नहीं करता, जहाँ कामिनी का प्रभाव है वहाँ कामिनी को वेदी पर बिठाया है।"

"आपसे झूठ नहीं बोलूँगी, मैं समझ रही हूँ कि मेरा प्रेम दिनों-दिन मेरे अन्य सब प्रेम को पीछे छोड़े जा रहा है।"

"कोई डर नहीं, खूब प्रेम करो। केवल 'मा-मा' के स्वर में जो देश को पुकारा करते हैं वे चिर-शिशु ही रहेंगे। देश बूढ़े-बच्चों की मा नहीं है, देश अर्द्ध-नारीश्वर है—स्त्री-पुरुष के मिलन में उसकी उपलब्धि है। इस मिलन को घर-गृहस्थी के पिंजड़े में बन्द करके निस्तेज मत करो।"

"लेकिन फिर आप उमा को—"

"उमा! काल्हू!—प्रेम के शुष्क रुद्ररूप हैं वे, वे इसे सह कैसे सकेंगे? जिस दाम्पत्य के घाट पर उनकी सम्पूर्ण साधना का अन्त्येष्टि-संस्कार है, समय रहते वहीं दोनों की गंगायात्रा* कराये दे रहा हूँ।—जाने दो इस चर्चा को। सुनने में आया है कि तुम्हारे घर में डकैत घुसा था परसों रात को।"

* मरणासन्न वृद्ध व्यक्ति को पहले से ही गंगा के तट पर ले जाने का नाम गंगायात्रा है।

"हाँ, घुसा तो था।"

"अपनी जुजुत्सु-शिक्षा से कुछ फायदा उठाया तुमने ?"

"मेरा तो विश्वास है कि डकैत की कलाई तोड़ दी है।"

"मन के भीतर अहा-उहू कुछ नहीं हुआ ?"

"होता, पर डर था, कहीं वह मेरा अपमान न कर बैठे। वह अगर यन्त्रणा से हार मान लेता, तो मैं आखिर तक मरोड़ न दे सकती।"

"पहचान सकी थीं वह कौन था ?"

"अँधेरे में दिखाई नहीं दिया।"

"अगर दिखाई देता तो पहचान लेतीं, वह अनादि था।"

"अरे-रे, यह क्या बात ! अपना अनादि ! वह तो लड़का ही है अभी !"

"मैंने ही उसे भेजा था।"

"आप ही ने ! क्यों ऐसा काम किया ?"

"तुम्हारी भी परीक्षा हो गई, और उसकी भी।"

"कैसे निष्ठुर हैं आप !"

"मैं था नीचे के कमरे में, उसी वक्त हड्डी ठीक कर दी। तुम अपने को समझती हो व्यथा-कातर। मैंने समझाना चाहा था कि विपत्ति के सामने कातरता स्वाभाविक नहीं होती। उस दिन तुमसे कहा था बकरी के बच्चे को पिस्तौल से मारने के लिए। तुमने कहा कि तुमसे हो ही नहीं सकता। तुम्हारी फुफेरी बहन ने बहादुरी के साथ मार दी गोली। जब देखा कि जानवर धप-से गिर पड़ा, तो कठोरता का आभास दिखाने के लिए ठहाका मारकर हँस पड़ी। हिस्टीरिया की हँसी थी वह, उस दिन रात को उसे नींद नहीं आई। मगर तुम्हें यदि शेर भी खाने आता और तुम डरपोक न होतीं, तो उसी वक्त उसे मार देतीं, दुबिधा न करतीं। हम उस शेर को मन के सामने स्पष्ट देखा करते हैं, दया-माया को तिलां-

जलि दे दी है, नहीं तो अपने को सेन्टिमेन्टल (भावुक) समझकर घृणा करता। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यही बात समझाई थी। निर्दय मत होना, पर कर्तव्य के समय निर्मम जरूर होना। समझ गईं ?"

"समझ गई।"

"अगर समझ गई हो, तो एक प्रश्न करूँगा। तुम अतीन को प्यार करती हो ?"

कोई जवाब न देकर एला चुप बनी रही।

"अगर कभी वह हम सबको विपत्ति में डाल दे, तो अपने हाथ से तुम उसे मार नहीं सकतीं ?"

"उनके लिए यह बात इतनी असम्भव है कि 'हाँ' कहने में भी मुझे हिचक नहीं।"

"मान लो, अगर सम्भव हो ?"

"मुँह से चाहे कुछ भी क्यों न कहूँ, अपने को क्या मैं अन्त तक पहचानती हूँ ?"

"पहचानना ही होगा अपने को। सारी भीषण सम्भावनाओं की रोज कल्पना करके अपने को तैयार रखना होगा।"

"मैं निश्चित रूप से कहती हूँ, आपने मुझे गलती से चुना है।"

मैं निश्चत जानता हूँ, "मैंने गलती नहीं की।"

"मास्टर साहब, आपके पैरों पड़ती हूँ, अतीन को मुक्ति दीजिए।"

"मैं मुक्ति देनेवाला कौन हूँ ? वह अपने ही संकल्प के बन्धन में खुद बँधा है। उसके मन से दुबिधा कभी भी नहीं मिट सकती; रुचि पर चोट पहुँचा करेगी हर घड़ी, तो भी उसका आत्म-सम्मान उसे ले जायगा अन्त तक।"

"आदमी पहचानने में क्या आप कभी गलती नहीं करते।"

"करता हूँ। बहुत से आदमी ऐसे हैं, जिनके स्वभाव में दो

तरह की बुनावट का काम है। दोनों में कोई मेल नहीं। फिर भी दोनों ही सत्य हैं। वे खुद अपने तईं भी गलती करते हैं।"

भारी गले की आवाज आई—"कहो जी, भाई साहब !"

"कन्हाई हो क्या ? आओ-आओ।"

कन्हाई गुप्त कमरे के भीतर दाखिल हुआ। ठिगना मोटा आदमी है अधबूढ़ा। दाढ़ी-मूँछ बनाने की फुरसत नहीं मिली, सारा चेहरा कँटीला हो उठा है। माथे के सामने के बाल उड़ गये हैं; धोती के ऊपर मोटी खादी की चद्दर है, धोबी की कृपा-दृष्टि से वंचित; कुरता है ही नहीं। हाथ दोनों शरीर के माप के हिसाब से छोटे लगते हैं, मालूम होता है—हमेशा वे काम करने को तैयार हैं। दल के लोगों का यथासम्भव पेट भरने के लिए ही कन्हाई की यह चाय की दूकान है।

कन्हाई ने अपने स्वाभाविक दबे और बैठे हुए गले से कहा—"भाई साहब, तुम्हारी ख्याति है वाक्संयम के लिए, तुम्हें मुनि कहा जाय तो बेजा नहीं। एला-जीजी शायद तुम्हारी उस ख्याति को मिट्टी में मिला देगी।"

इन्द्रनाथ ने हँसते हुए कहा—"बात न करने की ही साधना है हम लोगों की। नियम की रक्षा करने के लिए ही व्यतिक्रम की जरूरत है। यह लड़की खुद बात नहीं करती, दूसरों को बात कहने का मौका देती है,—वाक्य के लिए यह एक बहुमूल्य आतिथ्य है।"

"क्या कहते हो तुम भी ! एला-जीजी बात नहीं करतीं ! तुम्हारे सामने चुप हैं, पर जहाँ मुँह खोलती हैं, वहाँ वाणी की बाढ़ ही आई समझो। मैं तो पक्के माथे का आदमी हूँ, फिर भी भनक कान में पड़ते ही खाता-बही छोड़कर ओट से उसकी बातें सुनने चला आता हूँ। अब मेरी भी तरफ जरा ध्यान दो। एला-जीजी

सरीखा तो मेरा कंठ नहीं है, पर संक्षेप में जो कुछ कहूँगा, वह मर्म तक पहुँच जायगा।"

एला झट उठ खड़ी हुई। इन्द्रनाथ ने कहा—"जाने से पहले एक बात तुम्हें जता दूँ। *दल के लोगों के सामने मैं तुम्हारी निन्दा* किया करता हूँ। यहाँ तक कि ऐसी बात भी मैंने कही है कि किसी दिन तुम्हें शायद एकदम निश्चिह्न हटा देना पड़े। कहा है, अतीन को तुम फोड़े ले रही हो, जिससे और भी कुछ फूट सकता है।"

"कहते-कहते बात को सच क्यों किये डाल रहे हैं? क्या मालूम, यहाँ के साथ शायद मेरा कुछ असामंजस्य हो।"

"होने पर भी मैं तुम्हें सन्देह नहीं करता; परन्तु फिर भी उनके सामने तुम्हारी निन्दा करता हूँ। तुम्हारा शत्रु कोई नहीं है, ऐसी प्रसिद्धि है, मगर देखता हूँ कि तुम्हारे अनुरक्तों में से बारह-आने देशी मन उस निन्दा को विश्वास करने के लिए आग्रह के साथ लालायित हो उठते हैं। ये निन्दा-विलासी लोग निष्ठाहीन हैं। ऐसों के नाम खाते में नोट कर लेता हूँ। बहुत से पन्ने भर गये हैं।"

"मास्टर साहब, उन्हें निन्दा से प्रेम है, इसी से वे निन्दा करते हैं, मुझपर गुस्सा होने की वजह से नहीं।"

"अजातशत्रु नाम सुना है, एला? ये सभी जातशत्रु हैं। जन्मकाल से ही इनकी यह अहैतुक शत्रुता देश के अभ्युत्थान की सारी चेष्टाओं को बराबर धूल में मिलाती आ रही है।"

"भाई साहब, आज यहीं तक—विषय को आगामी अंक में समाप्य रहने दो। एला-जीजी, तुम्हारे चाय के निमन्त्रण तोड़ने की जड़ में गुप्तरूप से मेरा भी हाथ हो, तो कुछ खयाल मत करना। मेरी चाय की दूकान पर ताला पड़ने का समय आ पहुँचा। शायद सौ-दो-सौ कोस दूर जाकर अब की नाई की दूकान खोलनी पड़ेगी। इस बीच में अलकानन्द तेल के पाँच पीपे तैयार

करा लिये हैं। महादेव की जटा निचोड़कर निकाला गया है। एक सर्टिफिकेट दे देना, वत्से, लिखना—तेल लगाने के बाद से जूड़ा बाँधना एक आफत-सी हो गई है, लम्बी वेणी को सम्हालकर उठाना स्वयं दशभुजा देवी के भी बूते के बाहर है।"

जाते वक्त एला दरवाजे के पास आकर पीछे को मुँह करके बोली—"मास्टर साहब, याद रही आपकी बात, तैयार रहूँगी। मुझे हटाने का दिन भी शायद आयेगा, चुपके से बिला जाऊँगी।"

एला के चले जाने पर इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम्हें चंचल क्यों देख रहा हूँ, कन्हाई ?"

"फिलहाल सड़क के किनारे मेरी उस सामने की टेबिल पर ही तीन-चारेक गुंडे लड़के वीररस का प्रचार कर रहे थे। आवाज से मालूम होता था जॉन-बुल के ही दत्तक-बछड़े हैं। मैंने सिडिशन के नमूने बताकर उनके नाम से थाने में रिपोर्ट कर दी है।"

"समझने में गलती तो नहीं की, कन्हाई ?"

"बल्कि गलती से सन्देह करना अच्छा, मगर सन्देह न करके गलती करना घातक है। खालिस बेवकूफ ही अगर हुए तो कोई उन्हें बचा नहीं सकता, और अगर असल दुश्मन हुए तो उन्हें मार ही कौन सकता है ? मेरी रिपोर्ट से उन्नति ही होगी। उस दिन जोर-शोर से वे सब शैतान शासन-प्रणाली के ऊपर से रक्त-गंगा बहाने का प्रस्ताव कर रहे थे। निश्चय ही अभयचरण रक्षित इनकी उपाधि है। एक दिन शाम को कैश-बक्स लेकर हिसाब मिलाने बैठा था। अचानक एक फटे-पुराने मैले-कुचैले कपड़े पहने लड़का चला आया, चुपके से बोला—रुपये चाहिए पचीस, दिनाजपुर जाना है। अपने माथुर-मामा का नाम भी लिया। मैं तड़ाक से उछल कर चिल्ला उठा—शैतान, इतनी बड़ी हिम्मत तुम्हारी ! अभी पकड़वाये देता हूँ पुलिस बुलाकर।—अपने पास समय बिलकुल न था, नहीं-तो प्रहसन खतम कर देता, ले जाता थाने में। तुम्हारे

लड़के लोग जो बगल के कमरे में बैठे चाय पी रहे थे, वे मेरे ऊपर अग्निशर्मा हो उठे,—उसे देने के लिए चन्दा उगाहना शुरू कर दिया, सब की जेबें बटोरने पर देखा गया कि तेरह आने से ज्यादा फंड न हो सका। लड़का मेरी मूर्ति देखकर चुपके से चम्पत हो गया।"

"तब तो देखता हूँ तुम्हारे ढक्कन के छेद से गन्ध निकलने लगी है—मक्खियों की आमदनी शुरू हो गई।"

"इसमें शक नहीं। भाई साहब, अभी ही फैला दो अपने चेलों को दूर-दूर—उनमें से एक भी बेकार न रहने पावे। Ostensible means of livelihood—जीविका का प्रत्यक्ष साधन—हरएक के लिए होना ही चाहिए।"

"चाहिए तो जरूर ही। पर उपाय भी कुछ सोचा है ?"

"बहुत दिनों से। हाथ खाली न था, खुद कुछ कर न सका। सोच रखा है, उपकरण भी इकट्ठे कर लिये हैं धीरे-धीरे। माधव कविराज बेचता है ज्वराशनि-बटिका, उसमें बारह आने कुनैन है। वही लेकर लेबिल बदल के नाम रख दूँगा मैलेरियारि गोलियाँ, कुनैन के पीछे बहुत-सी झूठी बातें जोड़ देनी पड़ेंगी। प्रतुल सेन को लगा दिया जायगा कैन्विस-बैग हाथ में लिये उसके प्रचार करने में। तुम्हारा निवारण फर्स्ट क्लास एम० एस-सी० की लज्जा त्यागकर भैरवी-कवच के काम में लग जायगा,—उस कवच में सप्तधातु के सिवा नवीन रसायन की और भी कई नई धातुओं के नाम जोड़कर प्राचीन ऋषियों और आधुनिक विज्ञान का अभूतपूर्व सम्मिलन साधन किया जा सकता है। जगबन्धु संस्कृत श्लोकों पर व्याकरण का जादू चलाकर उच्चस्वर से प्रमाणित करता रहेगा कि चाणक्य जनमे थे बंगदेश के नेत्रकोना में, मेरा भी जन्मस्थान उसी सब-डिवीजन में है। इस विषय में भयंकर रूप से खंडन-मंडन चलने दो साहित्य-क्षेत्र में, अन्त में चाणक्य-जयन्ती की जायगी मेरे ही

परदादे के खंडहर मकान में। तुम्हारा कैम्बेली डाक्टर तारिणी संडेल शीतला माता के मन्दिर के लिए चन्दा वसूल करके मुहल्लेवालों की नींद हराम करता रहेगा। असल बात यह है कि तुम्हारे सबसे बढ़कर ऊँचे माथेवाले ग्रैनेडियर (योद्धा) लड़कों को कुछ दिनों के लिए फालतू रोजगारों से ढक देना होगा—कोई उन्हें बेवकूफ कहता रहे और कोई चतुर व्यवसायी।"

इन्द्रनाथ ने हँसकर कहा—"तुम्हारी बातें सुनकर मेरी भी इच्छा होती है कि किसी रोज़गार में लग जाऊँ। और किसी बात के लिए नहीं, सिर्फ दिवालिया होने की कार्य-प्रणाली और साइकॉलॉजी का अध्ययन करने के लिए।"

कन्हाई ने कहा—"तुम जिस रोजगार में लगे हुए हो, भाइ साहब, उसका आज न सही, कल सही, दिवाला तो निकलेगा ही। जो दिवालिये होते हैं वे न समझने के कारण होते हों, सो बात नहीं; असल में वे नुकसान के रास्ते को किसी भी तरह छोड़ नहीं सकते, इसी से होते हैं—दिवालिया होने का मरणाकर्षण सबसे बड़ा सब्लाइम आकर्षण है। फिलहाल इस विषय की आलोचना से कुछ फायदा नहीं, एक प्रश्न मन में उठता है, तुमसे पूछ लूँ। एला जैसी सुन्दरी साधारणत: देखने में नहीं आती—इस बात को मानते हो तुम?"

"मानता क्यों नहीं।"

"तो फिर उसे तुमने अपने अन्दर रखा किस बूते पर है?"

"कन्हाई, इतने दिनों में तुम्हें मुझ को समझ लेना चाहिए था। आग से जो डरता है वह आग का इस्तेमाल नहीं कर सकता। अपने काम में आग को मैं पृथक् नहीं रखना चाहता।"

"अर्थात् उससे काम बिगड़े या सुधरे,—तुम परवाह नहीं करते।"

"सृष्टिकर्ता आग से खेला करता है। निश्चित फल का हिसाब

लगाकर सृष्टि का काम नहीं चलाया जा सकता; अनिश्चित की प्रत्याशा से ही उसका विराट् प्रवर्तन है। ठंडा माल-मसाला लेकर अँगूठे से दबा-दबाकर जो खिलौने बनाये जाते हैं, उसके बाजार-भाव का हिसाब लगाकर लाभ करने का मन मेरा नहीं है। यह जो अतीन लड़का आया है एला के आकर्षण से, उसके अन्दर आफत ढाने का डाइनामाइट मौजूद है—उसके प्रति इसी लिए मेरी इतनी उत्सुकता है।"

"भाई साहब, तुम्हारी इस भीषण लैबारेटरी में हम लोग तो सिर्फ झाड़न कंधे पर डालकर बेहरा का काम करते हैं। उन्मत्त होकर अगर कहीं कोई गैस या यंत्र टूट-फूटकर छिटक पड़े, तो हमारे कपार चकनाचूर हो जायँगे। इस बात को लेकर गर्व करने का जोर हमारी खोपड़ी के भीतर नहीं है।"

"इस्तीफा देकर बिदा क्यों नही ले लेते ?"

"फल का लोभ जो है हम लोगों में—तुम्हें न हो, यह दूसरी बात है। तुम्हारे ही दलाल के मुँह से एक दिन सुना था—Elixir of life (जीवनामृत) शायद मिल सकता है। तुम्हारी इस सत्यानासी रिसर्च के चक्कर में हम गरीब जो आ पड़े हैं, वह निश्चित आशा के ही आकर्षण से, अनिश्चित की कुहक से नहीं। तुम इसे देख रहे हो जुआरी की नशीली आँखों से, हम देखते हैं रोजगार की साफ निगाह से। अन्त में खतियौनी-बही में आग लगाकर हम लोगों से मजाक मत कर बैठना, भाई साहब ! इसकी पाई-पाई में हमारी छाती का खून है।"

"मेरे मन में किसी तरह का अन्ध-विश्वास नहीं है, कन्हाई ! हार-जीत के बारे में तो एकदम सोचना ही छोड़ दिया है। विशाल कर्म के क्षेत्र में मैं हूँ कर्ता, यहीं मैं अच्छा लगता हूँ, इसी से हूँ—यहाँ हार भी बड़ी है, जीत भी बड़ी है। उन लोगों ने चारों तरफ के द्वार बन्द करके मुझे छोटा करना चाहा था,—मरते-मरते मैं

साबित कर देना चाहता हूँ कि मैं बड़ा हूँ। मेरी पुकार सुनकर कितने आदमी-से आदमी मृत्यु की अवज्ञा करके चारों ओर आ जुटे हैं; सो तो तुम देख ही रहे हो, कन्हाई। क्यों ? मैं पुकार सकता हूँ, तभी तो। इस बात को मैं अच्छी तरह जानकर और जताकर जाऊँगा, फिर जो होगा सो होगा। तुम भी तो बाहर से देखने में किसी दिन साधारण ही थे, पर तुम्हारी असाधारणता को मैंने प्रकाशित किया है। रस में डुबो दिया है तुम लोगों को, मनुष्यों को लेकर यह मेरी रसायन की साधना है। इससे ज्यादा और क्या चाहिए ? ऐतिहासिक महाकाव्य की समाप्ति पराजय के महाश्मशान में भी हो सकती है। परंतु है तो महाकाव्य ही ! गुलामी से दबे इस अंगहीन मनुष्यत्व के देश में अच्छी मौत मर सकना भी एक सुयोग है।"

"भाई साहब, मुझ जैसे अकाल्पनिक प्रैक्टिकल आदमी को भी तुम खींच लाये इस घोरतर पागलपन के ताण्डव-नृत्य मंच पर। जब सोचता हूँ, तो इस रहस्य का अन्त ही नहीं पाता मैं।"

"मैं कंगाल की तरह कुछ भी नहीं चाहता, इसी से तुम लोगों पर मेरा इतना जोर है। माया से बहकाकर लोभ दिखा कें किसी को नहीं बुलाया। पुकारता हूँ असाध्य के बीच में, फल के लिए नहीं, बल-वीर्य प्रमाणित करने के लिए। मेरा स्वभाव है इम्पर्स-नल—अवैयक्तिक। जो अनिवार्य है, उसे मैं अक्षुब्ध मन से अंगीकार कर सकता हूँ। इतिहास तो पढ़ा ही है, देखा है कितने महा-महा साम्राज्य गौरव के अभ्रभेदी शिखर पर पहुँच गये थे, आज वे धूल में मिल गये हैं—उनके हिसाब के खाते में कहीं कोई भारी कर्ज जमा हो रहा था, जिसे वे चुका नहीं सके। और यह देश, चूँकि हमारा ही देश है, सौभाग्य के चिर-स्वत्व को लेकर इतिहास की ऊँची गद्दी पर गद्दीनशीन होकर बैठा रहेगा और पराभव के समस्त कारणों पर सिन्दूर चन्दन लगाकर घंटा बजाकर

पूजा करता रहेगा, बेवकूफ की तरह ऐसे लाड़-प्यार का दावा किस पर करूँ, बताओ? मैंने ऐसा कभी नहीं किया। वैज्ञानिक के निर्मोही मन से मैं मान लेता हूँ कि जिसकी मरण-दशा आ गई है, वह मरेगा ही।"

"तब!"

"तब! देश की चरम दुरवस्था मेरा सिर नीचा नहीं कर सकती, मैं उससे भी बहुत ऊँचा हूँ— आत्मा में अवसाद न आने दूँगा—मरने के सारे लक्षण देखकर भी।"

"और हम लोग!"

"तुम लोग क्या नन्हें बच्चे हो! बीच समुद्र में जिस जहाज का पेंदा सात जगह से फट गया है, रो-पीटकर मंत्र पढ़कर विधाता की दुहाई देकर क्या उसे बचा सकते हो?"

"अगर न बचा सके तो?"

"तो क्या! तुम कई जनों ने जान-बूझकर तूफान के आगे उस डूबते जहाज का घातक पाल चढ़ा दिया है, तुम लोगों का कलेजा नहीं काँपा। ऐसे जितने आदमी मिले हैं, डूबते-डूबते उन्हीं को लेकर हमारी जीत है। रसातल को जाने के लिए जो देश अन्धे की तरह तैयार है, उसी के मस्तूल पर तुम लोग अन्त तक जय-पताका फहरा रहे हो—न तो तुम लोगों ने झूठी आशा की है, न कंगालपन दिखलाया है और न निराशा से छाती फाड़-फाड़ के रोये ही हो। तुम लोगों ने तब भी पतवार नहीं छोड़ी जब कि जहाज़ का पेंदा पानी से भर गया है। पतवार छोड़ने में ही कायरता है—बस, तुम जितनों को मैंने पाया, मेरा काम तो हो गया उन्हीं से। उसके बाद? कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।"

"तुम जो कुछ कह रहे हो, उसमें एक मुख्य बात छूट गई मालूम होती है।"

"कौन-सी बात?"

"तुम्हारे मन में क्या क्रोध भी नहीं है ? इतने इम्पर्सनल हो तुम !"

"क्रोध किस पर ?"

"अँगरेजों पर।"

"जो जवान शराब पीकर आँखें लाल बिना किये लड़ ही नहीं सकता, उस गँवार की मैं अवज्ञा करता हूँ। क्रोध में आकर कर्तव्य करने से उससे अकर्तव्य होने की ही अधिक सम्भावना है।"

"सो होने दो, मगर क्रोध का कारण मौजूद रहने पर क्रोध न करना अमानविक है।"

"सारे युरोप के साथ मेरा परिचय है, मैं अँगरेजों को भी जानता हूँ। जितनी भी पाश्चात्य जातियाँ हैं, उनमें यह सबसे बड़ी जाति है। रिपु की ताड़ना से वे मार नहीं सकते, यह बात नहीं; परन्तु पूरी तौर से नहीं मार सकते—शरमाते हैं। उनके अन्दर जो बड़े हैं, उन्हीं के सामने जवाबदेही करने में उन्हें सबसे बड़ा भय है—वे अपने को भी भुलावा देते हैं और उन्हें भी। उन पर जितना क्रोध करने से फुल-स्टीम बनाया जा सकता है, उतना क्रोध मेरे द्वारा सम्भव नहीं।"

"अद्‌भुत हो तुम।"

"सोलहो-आना मार की चोट से वे हमारे मेरुदण्ड को हमेशा के लिए चकनाचूर कर सकते थे। ऐसा वे नहीं कर सके। मैं उनके मनुष्यत्व को शाबाशी दूँगा। पराये देश में शासन करते-करते उनका वह मनुष्यत्व क्षय होता जाता है, इसी से उनमें मरण-दशा आती जाती है। विदेशों का इतना ज्यादा बोझ और किसी जाति के सिर पर नहीं है, इससे उनका स्वभाव नष्ट होता जा रहा है।"

"इसे वे समझें। मगर तुम जो अपने अध्यवसाय को लगभग अहैतुक बनाये डाल रहे हो, यह मेरे लिए ज्यादती मालूम होती है।"

"यह तुम्हारी जबरदस्त भूल है! मैं अन्याय नहीं करूँगा, उन्मत्त नहीं होऊँगा, देश को देवी समझकर मा-मा पुकारकर आँसू नहीं बहाऊँगा, फिर भी काम करता रहूँगा, इसी में मेरा जोर है!"

"शत्रु को अगर शत्रु समझकर द्वेष न करो, तो उसके विरुद्ध हाथ चलाओगे कैसे?"

"रास्ते पर पड़े हुए कंकड़ों के विरुद्ध जैसे हथियार चलाते हैं, वैसे अप्रमत्त बुद्धि से। वे अच्छे हैं या बुरे, यह तर्क का विषय नहीं है। उनका राज्य विदेशी राज्य है, उसने भीतर-ही-भीतर हमारा आत्म-लोप कर दिया है—इस स्वभाव-विरुद्ध अवस्था को डिगाने की कोशिश करके मैं अपने मानव-स्वभाव को स्वीकार कर रहा हूँ।"

"परन्तु सफलता के विषय में तुम्हें निश्चित आशा नहीं है।"

"न रहे, तो भी अपने स्वभाव का अपमान न करूँगा—सामने चाहे मृत्यु ही सबसे बढ़कर निश्चित क्यों न हो, तो भी। पराभव की अशंका है इसी लिए स्पर्द्धा करके उसकी उपेक्षा करके आत्म-सम्मान की रक्षा करनी होगी। मैं तो समझता हूँ, अब यही हमारा अन्तिम कर्तव्य है।"

"वह आ रहे हैं रक्तगंगा बहानेवाले नकली भगीरथ। उन्हें चाय पिला आऊँ। साथ ही स्पष्ट भाषा में खबर भी दे दूँगा कि पुलिस को सब रिपोर्ट कर दी गई है। तुम्हारे दल के बेवकूफ कहीं मुझे जिन्दा न जला डालें।"

दूसरा अध्याय

एला आराम-कुर्सी पर बैठी है, पीठ के पीछे तकिया लगा हुआ है। पैर पर पैर रखे, उस पर लकड़ी का बोर्ड रखकर देशबन्धु दास की मूर्ति-अंकित कापी पर तल्लीन होकर कुछ लिख रही है। दिन खतम होने में देर नहीं, पर अभी तक बाल यों ही बिखर रहे हैं—सँवारने की फुरसत ही नहीं मिली। बैंगनी रंग की खादी की साड़ी पहने हैं,—उसमें मैल छिपा रहता है और इसी लिए एकान्त में पहनने के लिए उसका अनादृत प्रयोजन है। हाथों में लाल रंग की शंख की दो चूड़ियाँ पड़ी हैं और गले में एक सोने का हार। हाथी-दाँत के समान गोरा बदन है गठा हुआ; मालूम होता है बहुत कम उमर है, पर चेहरे पर परिणत बुद्धि की गम्भीरता मौजूद है। खादी की सब्ज रंग की चादर से ढकी हुई लोहे की छोटी-सी खाट कमरे के एक कोने में, दीवार से सटी हुई पड़ी है। जमीन पर नारायणी-स्कूल की करवे की बुनी दरी का फर्श बिछा हुआ है। एक तरफ लिखने-पढ़ने की छोटी-सी टेबिल है, जिस पर बाकायदा बीच में ब्लाटिंग पैड, एक तरफ कलम-पेन्सिल-दावात और दूसरी तरफ पीतल की लुटिया में गन्धराज फूल सुशोभित है। दीवार पर पुराने जमाने के किसी फोटोग्राफ की प्रेतात्मा लटक रही है, जिसकी क्षीण पीली रेखाएँ विलीनप्राय हो रही हैं। अँधेरा होता आता है, बत्ती जलाने का समय हो गया। एला उठूँ-उठूँ कर रही थी कि इतने में आँधी की हवा की तरह खादी का परदा हटाकर अतीन्द्र कमरे में आया और बोला—"एली!"

एला मारे खुशी के चौंक उठी, बोली—"असभ्य कहीं के, बिना सूचना दिये इस कमरे में आने का साहस करते हो!"

एला के पैरों के पास धप-से जमीन पर बैठकर अतीन ने कहा—"जीवन बहुत छोटा है और कानून-कायदे हैं काफी लम्बे, नियमों की रक्षा करते हुए चलने-लायक आयु सनातन युग में थी मान्धाता की। कलियुग में उसका टोटा पड़ गया है।"

"अभी तो मैंने कपड़े भी नहीं बदले।"

"अच्छा ही है। तब तो मेरे साथ खप जाओगी। तुम रहो रथ पर और मैं चलूँ पियादा बनकर—ऐसा द्वन्द्व तो मनु के नियामानुसार अधर्म है। किसी जमाने में मैं था विशुद्ध भद्र पुरुष,—मेरी केंचुली तो तुम्हीं ने उतार फेंकी है। अब मेरी मौजूदा पोशाक कैसी देख रही हो?"

"कोश में इसे पोशाक में नहीं शुमार किया गया।"

"तो किसमें शुमार है?"

"शब्द ढूँढ़े नहीं मिल रहा। शायद भाषा में ही न हो। कुरते के सामने यह जो टेढ़ी-मेढ़ी भौंड़ी सींवन का दाग है, यह क्या तुम्हारी अपनी सींवन का लम्बा-चौड़ा विज्ञापन है?"

"तकदीर की मार गहरी होने पर भी मैं उसे छाती से लगा लेता हूँ—यह उसी का परिचय है। इस कुरते को दरजी के हाथ सौंपने की हिम्मत नहीं होती, आखिर उसके भी तो आत्म-सम्मान का ज्ञान होगा।"

"मुझे क्यों नहीं दिया?"

"नवयुग का सुधार-भर लिया है तुमने, फिर उस पर पुराने कपड़े का संस्कार?"

"इसे सहन करने की ऐसी कौन-सी जरूरत थी?

"जिस जरूरत से भले आदमी अपनी स्त्री को सहन करते हैं।"

"इसके मानी?"

"इसके मानी हैं, एक से ज्यादा न होना।"

"क्या कह रहे हो तुम, अन्तू ! इतनी बड़ी दुनिया में इसके सिवा तुम्हारे पास और दूसरा कुरता ही नहीं ?"

"बढ़ाकर कहना अनुचित है, इसलिए घटाकर कहा है। पूर्व-आश्रम में श्रीयुत अतीन्द्र बाबू के पास कपड़े थे बहुत और बहुत प्रकार के। इतने में देश में आ गई बाढ़। तुमने अपनी वक्तृता में कहा, ऐसे आँसू बहानेवाले बुरे दिनों में, (याद है आँसू बहानेवाले विशेषण की ?) जब कि हजारों भाई-बहनों को अपनी लाज बचाने लायक कपड़े मयस्सर नहीं, जिनके पास जरूरत से ज्यादा कपड़े हैं, उन्हें लज्जा आनी चाहिए। बड़े ढंग से कहा था तुमने। तब तुम्हारे सम्बन्ध में प्रकाश्य रूप से हँसने का साहस नहीं था मुझमें; पर मन-ही-मन हँसा था। निश्चित जानता था कि जरूरत से ज्यादा कपड़े होंगे तुम्हारे बक्स में। मगर औरतों के लिए पचास रङ्ग के पचास कपड़े हों, तो वे पचासों ही महज जरूरी हैं। उन दिनों देश-हितैषिणियों में होड़ चल रही थी,—कौन कितना दान-संग्रह कर सकती है। ले आया अपने कपड़ों का ट्रंक तुम्हारे चरणों तले। तालियाँ बजा उठीं मारे खुशी के।"

"यह कौन-सी बात है ? मैं क्या जानती थी कि इस तरह उँड़ेल दोगे अपना सब कुछ ?"

"अचम्भा क्यों करती हो ? दुःसाध्य हानि उठाने की शक्ति का संचार इस देह में इतनी तेजी से किसने किया था ? संग्रह का भार अगर अपने गणेश मजूमदार पर होता, तो उसका पौरुष मेरे बक्स को बहुत ही कम नुकसान पहुँचाता।"

"छि-छि, अन्तू, क्यों तुमने मुझसे कहा नहीं ?"

"अफसोस मत करो। बिलकुल ही शोचनीय अवस्था हो, सो बात नहीं; दो कुरते रँगवाकर रख दिये हैं नित्य की आवश्यकता के लिए, नम्बरवार धो-धोकर पहना करता हूँ। और भी दो तहियाये हुए रखे हैं आपद्धर्म के लिए। अगर किसी दिन इस सन्दिग्ध

संसार में अपने को शरीफ खानदान का साबित करने की जरूरत पड़ी, तो उसके लिए उन दोनों पर धोबी-दरजी का सर्टीफिकेट है ही।"

"सृष्टिकर्ता का सर्टीफिकेट तो इस चेहरे ही पर मौजूद है— गवाह पेश करने की जरूरत नहीं तुम्हें।"

"स्तुति! नारी के दरबार में स्तुति की अत्युक्ति तो हमेशा से पुरुषों के ही अधिकार में चली आ रही है, तुम उसे उलट देना चाहती हो?"

"हाँ, चाहती हूँ। प्रचार करना चाहती हूँ कि आधुनिक काल में स्त्रियों के अधिकार बढ़ रहे हैं। पुरुषों के विषय में भी सच कहने में उन्हें बाधा न होनी चाहिए। नवीन साहित्य में देखती हूँ— भारतीय महिलाएँ अपनी ही प्रशंसा में तल्लीन हैं, देवी की प्रतिमा बनाने का कुम्हार का काम उन लोगों ने अपने ही हाथ में ले लिया है। वे अपनी जाति की गुण-गरिमा पर साहित्यिक रङ्ग चढ़ा रही हैं। वह उनके अंगराग में ही शामिल है, अपने हाथ का पीसा हुआ—विधाता के हाथ का नहीं। मुझे इसमें शरम मालूम होती है। अब चलो बैठक में।"

"यहाँ भी बैठने की जगह है। मैं अकेला ही तो विराट् सभा नहीं हूँ।"

"अच्छा तो बताओ, जरूरी बात क्या है?"

"अचानक कविता की एक लाइन याद आ गई, पर वह कहाँ पढ़ी है, कुछ याद नहीं पड़ता। सबेरे से हवा टटोलता फिरता हूँ। तुमसे पूछने आया हूँ।"

"बहुत ही जरूरी काम मालूम होता है। अच्छा कहो, कौन-सी लाइन है?"

"जरा सोचकर बताना, किसकी रचना है :—

तुम्हारी आँखों में था देखा
मैंने अपना सत्यानास।"

"किसी प्रसिद्ध कवि की तो है ही नहीं।"

"पहले सुनी हुई-सी नहीं मालूम होती तुम्हें ?"

"परिचित गले का आभास मिलता है थोड़ा-सा। दूसरी लाइन कहाँ गई ?"

"मुझे विश्वास था, दूसरी लाइन तुम्हें अपने-आप ही याद आ जायगी।"

"तुम्हारे मुँह से अगर एक बार सुन लूँ, तो जरूर याद आ जायेगी।"

"तो सुनो :—

दिवस-अन्त के उस प्रकाश में
अरुण-वरण था चैत्रमास।
तुम्हारी आँखों में था देखा
मैंने अपना सत्यानास।"

अतीन के माथे पर हलकी-सी थपकी जमाकर एला ने कहा—"आजकल तुमने यह क्या पागलापन शुरू कर दिया है ?"

"उस दिन चैत मास की उस कुघड़ी से ही मेरा पागलापन शुरू हो गया है। जो दिन चरम तक पहुँचने से पहले ही निबट जाते हैं, वे फिर छाया-मूर्ति धारण करके कल्पलोक के दिगन्त में घूमा-फिरा करते हैं। तुम्हारे साथ मेरा मिलन होगा उसी मरीचिका की सुहागरात में। आज वहीं के लिए तुम्हें बुलाने आया हूँ—तुम्हारे काम की हानि करूँगा।"

गोद की तख्ती और कापी फर्श पर फेंकते हुए एला ने कहा—"पड़ा रहने दो मेरा काम। बत्ती जला दूँ।"

"नहीं रहने दो—प्रकाश प्रत्यक्ष को प्रमाणित करता है, चलो चलें दीपहीन पथ से अप्रत्यक्ष की ओर। चार साल से कुछ

कम हुआ होगा, स्टीमर पर मुकामाघाट से गंगा पार हो रहा था। तब तक मैं अपनी पैतृक सम्पत्ति का फूटा किनारा पकड़े हुए था, जो कर्ज के गढ़े से भरा था। तब तक मेरे तन और मन में शौकीनी का रंग चढ़ा हुआ था—देवालिये दिनान्त के बादलों की तरह। सिल्क का कुरता पहने और कंधे पर मूँगे की चादर डाले फर्स्ट-क्लास डेक पर बेंत की आराम-कुरसी पर बैठा था। फेंके हुए अखबार के पन्ने इधर से उधर फर-फर उड़ रहे थे, मजे से उन्हें देख रहा था; मालूम होता था, मानो मूर्तिमती अफवाहें बगैर सिलसिले के नाच रही हों। तुम थीं सर्व साधारण के दल में, कमर बाँधे हुए डेक-पैसेन्जर। अचानक मेरे पीछे की अगोचरता में से तुम तेजी से निकल आईं मेरे सामने। आज भी आँखों के सामने दिखाई देती है तुम्हारी वह ब्राउन रंग की साड़ी; जूड़े के दोनों तरफ पिन से अटका हुआ साड़ी का पल्ला चेहरे के दोनों तरफ हवा से फूल रहा था। कोशिश करके असंकोच का भाव लाकर तुमने पूछा था—आप खद्दर क्यों नहीं पहनते?—याद है?"

"बिलकुल साफ। अपनी मन की तसवीर से तुम बातें करा सकते हो,—मेरी तसवीर गूँगी है।"

"मैं आज उस दिन की पुनरुक्ति करता जाऊँगा, तुम्हें सुनना होगा।"

"सुनूँगी नहीं तो क्या। वह दिन जहाँ मेरे नवीन जीवन-संगीत की टेक है, बार-बार वहीं मेरा मन लौट जाना चाहता है।"

"तुम्हारे कंठ का स्वर सुनते ही मेरा सारा शरीर चौंक उठा, वह स्वर मेरे मन में आकर सहसा चाँदनी की छटा-सा मालूम हुआ; मानो आसमान से कोई खूबसूरत चिड़िया उतर आई और एक ही झपट्टे में मेरा पहले का सब कुछ छीन ले

गई । अपरिचिता महिला की उस कल्पनातीत स्पर्द्धा पर यदि गुस्सा हो सकता, तो शायद उस दिन की पार लगानेवाली नैया मुझे इतने गहरे खतरनाक घाट पर न पहुँचा देती—अन्त में शायद शरीफों के मुहल्ले में ही चालू रास्ते पर दिन बीतते। पर मन गीली दियासलाई-सा ठिठुर गया था, गुस्से की आग जली ही नहीं। मेरे स्वभाव का सर्वप्रधान गुण है अहंकार, इसी से चट से खयाल आया, यह लड़की अगर खास तौर से मुझे पसन्द न करती, तो इस तरह खास तौर से मुझे ही धमकी देने न आती; रहा खद्दर-प्रचार—यह तो एक बहाना है,—अच्छा, सच्ची बात थी कि नहीं, बताओ।"

"अजी हाँ, कितनी बार कह चुकी हूँ—बहुत देर तक डेक के एक कोने में बैठी हुई तुम्हें निहार-निहार कर देख रही थी। भूल ही गई थी कि और कोई मेरी इस हरकत को ताड़ रहा है या नहीं। मेरे जीवन में वही मेरा सबसे बड़ा आश्चर्य है—एक चितवन में चिर-परिचय ! मन बोला, कहाँ से आया यह बहुत दूर जात का आदमी, अपने चारों ओर के माप के अनुसार तो बना नहीं, यह तो शैवाल के बीच में शतदल कमल है। तभी मन ही मन मैंने प्रण कर लिया था, इस दुर्लभ मनुष्य को खींच लाना होगा,—सिर्फ अपने ही पास नहीं, अपने सबके पास।"

"मेरी तकदीर से तुम्हारी एकवचन की चितवन दब गई बहुवचन की चितवन के नीचे।"

"मेरे लिए कोई चारा नहीं था, अन्तू। कुन्ती ने द्रौपदी को देखने से पहले ही कहा था, तुम सब मिलकर बर-बाँट लेना। तुम्हारे आने के पहले ही मैंने शपथ खाकर देश का आदेश स्वीकार किया था, कहा था—अपने लिए कुछ भी न रखूँगी। मैं देश के लिए वाग्दत्ता हूँ।"

"अधार्मिक है तुम्हारा प्रण लेना, इस प्रण की रक्षा करना भी तुम्हारे लिए प्रतिदिन का स्वधर्म-विद्रोह है। प्रण को अगर तोड़ देतीं, तो सत्य की रक्षा होती। जो लोभ पवित्र है, जो अन्तर्यामी की आदेशवाणी है, उसे तुमने अपने दल के पैरों-तले दलित किया है,—इसकी सजा तुम्हें भुगतनी पड़ेगी।"

"अन्तू, सजा की तो हद नहीं, वह दिन-रात मुझे मार रही है। जो आश्चर्यजनक सौभाग्य सम्पूर्ण साधनाओं के अतीत है, जो दैव का अयाचित दान है, वह आया मेरे सामने और फिर भी मैं उसे पा न सकी। हृदय-हृदय में गाँठ बँधी हुई है, यह सब कुछ होते हुए भी मैं यही चाहती हूँ कि इतना बड़ा दुःसह वैधव्य किसी स्त्री के भाग्य में न आवे। मैं एक मन्त्र-पढ़े घेरे के भीतर थी, पर तुम्हें देखते ही मन उत्सुक हो उठा, बोला—टूट जाने दो सब घेरा। ऐसी उथल-पुथल हो सकती है, इस बात की मैंने कल्पना भी न की थी। अगर कहूँ कि इसके पहले कभी मन विचलित ही नहीं हुआ, तो झूठ बोलना होगा। हाँ, चंचलता को जीतकर मैं अपनी शक्ति के गर्व से बहुत खुश हुई थी। पर विजय का वह गर्व अब नहीं रहा, इच्छा खो दी है मैंने,—बाहर की बात जाने दो, भीतर की ओर गौर से देखो, हार गई हूँ मैं। तुम वीर हो, मैं तुम्हारी बन्दिनी हूँ।"

"मैं भी हार गया हूँ अपनी इस बन्दिनी के आगे। मेरी हार अभी खतम नहीं हुई, प्रतिक्षण के युद्ध में प्रतिक्षण ही हार रहा हूँ।"

"अन्तू, फर्स्ट-क्लास डेक पर जब अपूर्व आविर्भाव की भाँति तुमने मुझे दूर से दर्शन दिये थे, तब तक मैं यही समझती थी कि थर्ड-क्लास का टिकट हमारे आधुनिक आभिजात्य का एक उज्वल निदर्शन है। अन्त में तुम रेल पर चढ़े सेकण्ड-क्लास में, और मेरे तन-मन को भी जोर से खींचा उसी क्लास की तरफ। यहाँ तक

कि मेरे मन में एक चतुराई भी सूझी, सोचा कि गाड़ी छूटते वक्त जल्दी में तुम्हारे डब्बे में चढ़ जाऊँगी, कहूँगी—जल्दी में गलती हो गई। काव्य-शास्त्र में स्त्रियाँ ही अभिसार के लिए जाती रही हैं, सांसारिक विधि-निषेध की बाधा होने से ही शायद कवियों ने ऐसी करुणा की है। ऊहापोह करनेवाले मन की जितनी भी बिखरी हुई इच्छाएँ हैं, वे भीतर की अँधेरी कोठरियों में भटकती हुई सिर धुनती फिरती हैं दीवारों पर। स्त्रियाँ उनकी बात को परदे के बाहर किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करना चाहतीं। तुमने मुझसे मंजूर करा लिया है।"

"क्यों मंजूर किया ?"

"नारी-जाति का घमंड तोड़कर सिर्फ मंजूरी ही तो तुम्हें दे सकी हूँ, और तो कुछ दे नहीं सकी।"

सहसा अतीन ने एला का हाथ पकड़कर दबा लिया, कहने लगा—"क्यों नहीं दे सकीं ? किस बात की रुकावट थी मुझे ग्रहण करने में ? समाज की ? जाति-भेद की ?"

"छि: छि:, ऐसी बात मन में भी न लाना। बाहर की कोई बाधा नहीं, बाधा है भीतर की।"

"काफी प्रेम नहीं हुआ अभी ?"

"काफी के कोई मानी नहीं होते, अन्तू! जो शक्ति हाथ से पहाड़ को न हटा सकी हो, उसे कमजोर कहकर चिढ़ाओ मत। शपथ करके सत्य ग्रहण किया था, ब्याह न करूँगी। ऐसा न करने पर भी, सम्भव था कि ब्याह न भी होता।"

"क्यों नहीं होता ?"

"नाराज मत होओ, अन्तू! प्यार करती हूँ, इसी से तो संकोच है। मैं नि:स्व हूँ, देना भी चाहूँ तो कितना दे सकती हूँ तुम्हें!"

"साफ-साफ बताओ भी तो ?"

"बहुत बार बता चुकी।"

"फिर बताओ, आज सब कहना-सुनना खतम कर लेना चाहता हूँ—इसके बाद फिर कभी न पूछूँगा।"

बाहर से आवाज आई—"जीजी-रानी।"

"क्या रे अखिल, आ न भीतर।"

लड़के की उमर सोलह या अठारह साल की होगी। जिद्दी शरारत भरा प्यारा चेहरा है। घुँघराले बाल हैं बड़े-बड़े उलझे हुए; कोमल गेहुँआ रंग है, चंचल आँखों में चमक है एक तरह की। खाकी रंग की कमीज और उसके ऊपर उसी रंग का लौट-कालर का ऊँचा कोट पहने है, कमीज का एक बटन खुला है, जिससे छाती का कुछ हिस्सा दिखाई पड़ता है। कमीज की दोनों तरफ की जेबें तरह तरह की फालतू सम्पत्ति से फूल उठी हैं, ऊपर की जेब में एक विचित्र फलोंवाला हिरन के सींग का चाकू है। कभी तो वह खेलने की नाव बनाता है और कभी एरोप्लेन का नमूना। हाल ही में वह मल्लिक-कम्पनी के आयुर्वेदिक बगीचे में पानी निकालनेवाली एक मशीन देख आया है—बिस्कुट की टीन वगैरह बहुत-सी फालतू चीजों को जोड़-जाड़कर उसी की नकल करने की कोशिश कर रहा है। उँगली काट ली है, उस पर लत्ता लपेट रखा है,—एला पूछती है तो कुछ जवाब ही नहीं देता। एला इस मा-बाप-मरे लड़के की दूर के नाते से बहन लगती है,—बेचारी बहुत बर्दाश्त करती है। न जाने कहाँ से वह एक ठिगनी जात का बन्दर सस्ते दामों में ले आया है। यह जानवर भण्डारघर की चोरी करने में बहुत दक्ष है। एला के अपने छोटे-से परिवार में यह जानवर एक बड़ा भारी उपद्रव है।

कमरे में घुसते ही अखिल ने सलज्ज शीघ्रता से आकर पैर छूकर एला को प्रणाम किया। एला समझ गई कि उसका यह

प्रणाम किसी एक विशेष अनुष्ठान से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि भक्तिवृत्ति उसके स्वभाव के बाहर की चीज है।

एला ने कहा—"अपने अन्तू भइया को प्रणाम नहीं करेगा ?"

कुछ जवाब न देकर अखिल अतीन की तरफ पीठ फेरकर खड़ा हो गया। अतीन ठहाका मारकर हँस पड़ा। अखिल की पीठ ठोंककर बोला—"शाबाश, सिर अगर झुकाना ही हो तो सिर्फ एक देवता के आगे। उस एकेश्वरी के आगे मैं भी सिर झुकाता हूँ,—अब प्रसादी के बँटवारे में नाराजी मत दिखाओ भाई, काफी बचा हुआ है।"

एला ने अखिल से कहा—"तुझे क्या कहना है, बोल।"

अखिल ने कहा—"कल मेरी मा का मरने का दिन है।"

"अच्छा ! मैं तो भूल ही गई थी। श्राद्ध में किसी को न्योतना चाहता है क्या ?"

"किसी को नहीं।"

"तो क्या चाहता है ?"

"पढ़ने-लिखने की छुट्टी चाहता हूँ तीन दिन की।"

"क्या करेगा छुट्टी लेकर ?"

"खरगोश के लिए पिंजड़ा बनाऊँगा।"

"खरगोश तो तेरा एक भी नहीं बचा, पिंजड़ा बनायेगा किसके लिए ?"

अतीन ने हँसकर कहा—"खरगोश तो कल्पना करने से ही हो सकते हैं, असल बात तो पिंजड़ा बनाना है। मनुष्य तो अनित्य है, आता है और चला जाता है, परन्तु चिरकाल के लिए पक्की तौर से पिंजड़ा बनाने का भार भगवान् मनु से लेकर उनके आधुनिक अवतार तक सबने ले रखा है। इस काम का उन्हें बड़ा जबरदस्त शौक है।"

"अच्छा, जा, तेरी छुट्टी है !"

दूसरी बात न करके अखिल चट से भाग गया।

अतीन ने कहा—"इसे मैं बस नहीं कर सका। मेरी पुरानी सम्पत्ति की झाड़न-पोंछन में एक रिस्टवाच बची हुई थी, आधुनिक लड़कों के लिए ऐसी चीज राजा के राज्य से कम नहीं। एक दिन उसे मैंने देना चाहा, तो सिर हिलाकर चलता बना। इसी से समझ सकती हो कि हम दोनों का मामला साम्प्रदायिक हो उठा है, अन्तू-अखिल दंगा होने के लक्षण हैं ये !"

"लड़कों से मेल करने में तुम्हारा जोड़ मिलना मुश्किल है, फिर भी इस बन्दर से तुमने हार क्यों मान ली ?"

"बीच में जो तीसरा पक्ष दखल दे रहा है, नहीं तो हम दोनों तो हरि-हर बन जाते। खैर जाने दो,—तुम क्या कैफियत देना चाहती हो ? क्यों मुझे अलग रखा ?"

"एक सीधी-सी बात तुम्हें याद क्यों नहीं रहती, कि तुमसे मैं उमर में बड़ी हूँ ?"

"वजह यह कि इस सीधी-सी बात को मैं भूल नहीं सकता कि तुम्हारी उमर अठाईस की है और मेरी अठाईस साल कुछ महीने ज्यादा की है। प्रमाणित करना भी बहुत सहज है, क्योंकि दस्तावेज ताम्रशासन पर ब्राह्मीलिपि में नहीं लिखा है।"

"मेरा अठाईस तुम्हारे अठाईस को पार करके बहुत दूर पहुँच गया है। तुम्हारे अठाईस में यौवन की सभी बत्तियाँ निर्धूम जल रही हैं। अब भी तुम्हारी खिड़कियाँ जिनकी ओर खुली हुई हैं, वे अनागत हैं—अचिन्त्य हैं।"

"एली, मेरी बात तुम किसी भी कदर समझना चाहती ही नहीं, इसी से नहीं समझतीं। दल के सामने तुमने भगवान् के सत्य के विरुद्ध सत्य का प्रण किया है, इसी से नाना युक्ति-तर्कों से अपने को बहला रही हो और साथ ही मुझे भी। बहलाओ,

मगर यह बात मत कहो कि मेरे जीवन में अब भी अनागत अचिन्त्य दूर रह गया है। आ गया है वह, और वह हो तुम। तो भी, अभी तक वह अनागत है! तो क्या हमेशा ही उसकी तरफ खिड़की खुली ही रहेगी? उस शून्य के भीतर से क्या बराबर मेरा ही आर्त स्वर बजता रहेगा—चाहता हूँ, तुम्हें चाहता हूँ,—और दूसरी तरफ से कोई प्रत्युत्तर ही न आयेगा?"

"नहीं आता, ऐसी बात कैसे कह रहे हो तुम, अकृतज्ञ? चाहती हूँ, चाहती हूँ, चाहती हूँ, तुमसे ज्यादा और कुछ भी नहीं चाहती इस दुनिया में। जिस समय आँखें चार होते ही 'शुभदृष्टि' सम्पन्न हो जाती, उस समय जो नहीं मिले। मगर फिर भी कहती हूँ, सौभाग्य से नहीं मिले।"

"क्यों? नुकसान क्या था उसमें?"

"मेरा जीवन सार्थक हो जाता, उसकी कीमत ही क्या है! किसी के समान नहीं हो जो तुम; तुम महान् हो। दूर हूँ, इसी से तो देख सकी तुम्हारे उस असाधारण प्रकाश को। साधारण अपने को लेकर तुम्हें जकड़ डालने की कल्पना करने में मुझे डर लगता है। मेरी छोटी-सी दुनिया में रोजमर्रा की तुच्छता के आदमी बनोगे तुम! कैसे समझाऊँ तुम्हें कि मैं कितना ऊपर को मुँह उठाकर तुम्हारा ललाट देख पाती हूँ? स्त्रियों की पूँजी क्या है, जीवन की छोटी-छोटी बातें ही तो? उस बोझे से तुम-सरीखे पुरुष के जीवन को भी ढक देने में डरती न हों, ऐसी स्त्रियाँ भी हैं; पर उन्होंने कितने जीवनों को दुःखान्त बना दिया है, सो भी मैं जानती हूँ। अपनी आँखों के सामने देखा है, लता के जाल ने वनस्पति को बढ़ने नहीं दिया; वही स्त्रियाँ शायद समझती हैं उन्हें जकड़े रहना ही काफी है!"

"एला, जो पाता है, वही जानता है कि 'काफी' किसे कहते हैं।"

"अपने को बहलाना नहीं चाहती, अन्तू! प्रकृति ने हम स्त्रियों का आजन्म अपमान किया है। दुनिया में हम प्राणि-विज्ञान का संकल्प ढोती आई हैं, और साथ-साथ जीव-प्रकृति के अपने जुगाड़ किये हुए अस्त्र और मन्त्र भी। उनका अगर ठीक तौर से इस्तेमाल करना जानती होतीं, तो सस्ते में हम अपना सिंहासन जीत लेतीं। साधन के क्षेत्र में पुरुष को अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करनी पड़ती है। वह श्रेष्ठता क्या चीज है, सौभाग्यवश मुझे उसे जानने का मौका मिला है। पुरुष हमसे बहुत बड़े हैं।"

"ऊँचाई में!"

"हाँ, ऊँचाई ही में। प्रकृति को लाँघकर बड़ा होने का तोरण-द्वार उसी के माथे पर है। मेरे बुद्धि-उद्धि हो चाहे न हो, नम्र होकर अपने को जो समर्पित कर सकी हूँ, सो सिर्फ ऊपर की ओर देखकर।"

"किसी नीच ने ऊधम नहीं मचाया?"

"मचाया है। हमारे खिंचाव से जो प्राणि-विज्ञान की नीचे की मंजिल तक उतर आते हैं, वे भद्दे होकर बिगड़ जाते हैं। व्यक्तिगत विशेष इच्छाएँ या आवश्यकताएँ न रहने पर भी, नीचे खींच लाने के एक साधारण षड्यन्त्र में हम सभी नारियाँ एक होकर मिल गई हैं,—सज-धज में, बनाव-शृंगार और हाव-भाव में, बनावटी बातों में हम सब एक हैं।"

"बेवकूफों को बहलाने के लिए?"

"हाँ जी हाँ, तुम लोग बेवकूफ तो हो ही! बहुत ही आसान मन्त्र से बहल जाते हो, इसी से तो हम लोगों को इतना गरूर है। हम बेवकूफों को प्यार करती हैं, फिर भी उनको

मोटी बेवकूफी की सबसे ऊँची चोटी पर देखा है सूर्योदय,—जब वे प्रकाश लाये, तो उनकी पूजा की है। गन्दे नीच निन्दक भी बहुत देखे हैं, और कंजूस कुत्सित भी देखे हैं। उन सबको छाँट-छूटकर और सबको मानकर भी तो बहुत बच रहता है! उन बचे हुओं को ही देखा है उज्ज्वल प्रकाश में। उनमें से बहुतों का नाम तक किसी को याद न रहेगा, फिर भी वे बड़े हैं—महान् हैं।"

"एली, तुम्हारी बातें सुनकर मुझे लज्जा आती है, सोचता हूँ प्रतिवाद न करने से भद्दा मालूम होगा। साथ ही अच्छा भी लगता है। पर सच्ची बात में तुमसे हार नहीं मान सकता। अपने देश के पुरुषों में कापुरुषता के जो लक्षण मैं बचपन से देखता आया हूँ—जिसने मुझे बार बार चिन्ता में डाला है—उसे आज मैं तुमसे कहूँगा ही। मैंने देखा है, मेरे जान-पहचान के परिवार में और मेरे अपने घर भी, सास के असह्य अन्याय का आधिपत्य मैंने अपनी आँखों से देखा है। सासों के अत्याचार की कथाएँ इस देश में हमेशा से प्रचलित हैं।—"

"हाँ, सो तो मैं जानती हूँ। अपने घर में देखा है, जो आदमी खुद भीतर से कमजोर है, कमजोरों का यम तो वही है—उसके समान निष्ठुर और कोई हो ही नहीं सकता।"

"एला, ऐसी बात कहकर तुम अपनी भावी सास की निन्दा की भूमिका मत बाँधो। नववधू पर अमानुषिक अत्याचार के समाचार अकसर सुनने में आते हैं, और देखते हैं कि उसकी प्रधान नायिका हैं सास। मगर एक बात पूछता हूँ, सास को बे-रोक-टोक अन्याय करने का अधिकार दिया किसने है? उन्हीं मा के ललनाओं ने ही तो! अत्याचारिणी के विरुद्ध अपनी स्त्री की लाज रखने की शक्ति जिनमें नहीं, उन नाबालिगों की क्या कभी भी ब्याह करने की उमर होती है? जब होती है, तब वे अपनी

स्त्री के लला बन जाते हैं। जहाँ पुरुष का पौरुष कमजोर है, वहीं स्त्रियाँ उतर आती हैं, और उन्हें भी नीचता की ओर उतारती रहती हैं। अब तो देखते हैं कि हमारे देश में जो लोग कोई बड़ा काम करना चाहते हैं, वे स्त्री को त्याग देना चाहते हैं—स्त्रैण कापुरुष हैं वे, स्त्री से डरते हैं। इसीलिए इस कापुरुषों के देश में तुमने प्रण किया है व्याह न करने का, इस डर से कि कहीं कोई कोमल-कच्चा मन तुम्हारे जनाने प्रभाव से लचककर टेढ़ा न हो जाय। परन्तु जो यथार्थ पुरुष हैं, वे यथार्थ स्त्री के जोर से ही चरितार्थ होंगे—विधाता का यह अपने हाथ का लिखा हुआ हुक्मनामा हमारे खून में मौजूद है। जो उस विधि-लिपि को व्यर्थ कर देता है, वह पुरुष-नाम के योग्य नहीं। परीक्षा का भार तुम्हारे ही हाथ में था, परीक्षा करके मुझे देखा क्यों नहीं ?"

"अन्तू, बहस मैं कर सकती थी, पर तुम्हारे साथ बहस न करूँगी। क्योंकि, मैं जानती हूँ—तुमने अत्यन्त क्षोभ में आकर ही ये सब कुयुक्तियाँ पेश की हैं। मेरे प्रण की बात तुमसे भुलाये भूलती नहीं।"

"नहीं, नहीं भूल सकता। तुमने तो कह ही दिया, पुरुष महान् है, और तुम्हें डर इस बात का है कि स्त्रियाँ उन्हें छोटा बनाती हैं। स्त्रियों को महान् होने की जरूरत ही नहीं होती। वे जितनी हैं, उतने ही में सम्पूर्ण हैं। जो अभागा पुरुष महान् नहीं है, वह असम्पूर्ण है;—उसके लिए सृष्टिकर्ता लज्जित है।"

"अन्तू, उस असम्पूर्णता में भी हमें विधाता की इच्छा दिखाई देती है,—वह महान् इच्छा है।"

"एली, विधाता की इच्छा ही बड़ी है, सो तो मैं नहीं कह सकता, क्योंकि उनकी कल्पना भी किसी अंश में छोटी नहीं, उस कल्पना की तूलिका के स्पर्श का जादू तो स्त्रियों की ही प्रकृति में लगा है, वे ही संसार-क्षेत्र में कलाकार की साधना लाई हैं, और उन्हीं ने अपने

तन-मन-प्राणों से—रंग और स्वर से अनिर्वचनीय को प्रकट किया है। यह सहज-स्वाभाविक शक्ति का कार्य है और इसीलिए सहज नहीं है। यह जो तुम्हारे शंख-से चिकने रंग के कंठ में सोने का हार दिखाई दे रहा है, इसके लिए तुम्हें नोट्स याद नहीं करने पड़े। और ऐसी अभागिन भी मौजूद हैं, जो अपने जीवन-लोक में रूप की सृष्टि में रस नहीं ला सकीं, या तो वे सोने के मोटे कड़े पहनकर गृहिणीपना दिखाने में ही मुखरा हैं, या फिर दासी बन के आँगन लीपकर जीवन बिताती हैं। संसार में इन सब असमर्थों की कोई शुमार नहीं।"

"मैं तो सृष्टिकर्ता को दोष दूँगी, अन्तू! स्त्रियों को लड़ने की ताकत क्यों नहीं दी उसने? छल करके क्यों उन्हें अपनी रक्षा करनी पड़ती है? इस बात को जब मैंने किताबों में पढ़ा कि दुनिया में सबसे बढ़कर जघन्य जो जासूसी का रोजगार है, उस रोजगार में स्त्रियों की निपुणता पुरुषों से बढ़कर है, तब मैंने विधाता के पैरों पर सिर धुनकर कहा था कि सात जनम में भी मुझे लड़की होकर न पैदा होना पड़े। पुरुषों को मैंने नारी की आँखों से देखा है, इसी से सब कुछ लाँघकर मैंने उनकी श्रेष्ठता ही देखी है, मैं उनकी महानता को ही देख सकी हूँ। जब देश के बारे में सोचती हूँ, तो उन सब सोने के टुकड़े लड़कों की ही बात सोचती हूँ; मेरा देश तो उन्हीं में है। वे अगर गलती करें, तो बहुत बड़ी गलती करेंगे। मेरी तो छाती फटती है, जब मैं सोचती हूँ कि अपने ही घर में उन्हें जगह नहीं मिली। मैं उन्हीं की मा हूँ, उन्हीं की बहन हूँ, उन्हीं की लड़की हूँ—इस बात को याद करके मेरी छाती भर आती है। अँगरेजी पढ़ी लड़कियाँ अपने को सेविका कहने में हिचकती हैं, पर मेरा सम्पूर्ण हृदय कह उठता है—मैं सेविका हूँ, तुम लोगों की सेवा करने में ही मेरी सार्थकता है। हमारे प्रेम की चरम सीमा इसी भक्ति में है।"

"अच्छी ही बात है; तुम्हारी उस भक्ति के लिए बहुत से पुरुष मौजूद हैं, पर मुझे क्यों? भक्ति के बिना भी मेरा काम चल जायगा। स्त्रियों के बारे में जो लिस्ट तुमने दी है, मा-बहन और लड़की की, उसमें एक मुख्य बात तो रह ही गई,—मेरी ही तकदीर का दोष है।"

"तुम्हारी अपेक्षा मैं तुम्हें अधिक पहचानती हूँ, अन्तू! मेरे लाड़-प्यार के छोटे-से पिंजड़े में दो ही दिन में तुम्हारे डैने फड़फड़ा उठते। हम लोगों के हाथ में तृप्ति के जो साधारण उपकरण हैं, वे एक न एक दिन तुम्हारे लिए निबट ही जाते। तब तुम समझ जाते कि मैं कितनी गरीब हूँ। इसी से मैंने अपनी सारी माँगें वापस ले ली हैं, अपने सम्पूर्ण हृदय से तुम्हें देश के हाथ सौंप दिया है। वहाँ तुम्हारी शक्ति स्थान की कमी से तकलीफ न पायेगी।"

अतीन की दोनों आँखें चमक उठीं, मानो अत्यन्त व्यथित स्थान पर चोट लग गई हो। कमरे में इधर से उधर चक्कर लगा आया एक बार। उसके बाद एला के सामने आकर खड़ा हो गया, बोला—"तुमसे कड़ी बात कहने का समय आ गया है। मैं पूछता हूँ, देश के हाथ हो चाहे और किसी के हाथ, तुम मुझे सौंपनेवाली कौन हो? तुम सौंप सकती थीं माधुर्य का दान, जो वास्तव में तुम्हारी अपनी चीज थी। तुम उसे सेवा कहती हो तो वही सही, और वरदान कहना चाहो तो वह भी कह सकती हो। मुझे अगर अहंकार करने दो तो, अहंकार करूँगा, अगर नम्र होकर अपने द्वार पर आने के लिए कहो तो सो भी आ सकता हूँ। लेकिन तुम अपने दान के अधिकार को आज तुच्छ रूप में देख रही हो। नारी की महिमा से हृदय का ऐश्वर्य जो तुम दे सकती थीं, उसे छिपाकर तुम कह रही हो—देश के हाथ सौंप दिया तुम्हें! नहीं दे सकतीं तुम, नहीं दे सकतीं, कोई भी नहीं दे सकता। देश का मामला ऐसा नहीं, जो एक हाथ से दूसरे हाथ में सौंपा जा सके।"

एला का चेहरा फक पड़ गया। बोली—"क्या कह रहे हो, साफ समझ में नहीं आया।"

"मैं कह रहा हूँ, नारी को केन्द्र करके जो माधुर्यलोक विस्तृत है, उसका प्रसार यद्यपि देखने में छोटा मालूम होता है, पर उसके भीतर की गहराई की सीमा नहीं, वह पिंजड़ा नहीं है। लेकिन 'देश' की उपाधि देकर जिसमें मेरा घोंसला करार दिया था, वह तुम्हारे दल का बनाया हुआ देश है,—दूसरों के लिए चाहे जो हो, मेरे स्वभाव के लिए तो वही पिंजड़ा है। मेरी निजी शक्ति उसमें सम्पूर्णत: प्रकट नहीं हो पाती, इसी से वह अस्वस्थ हो जाती है, विकृति आ जाती है उसमें; जो उसकी वास्तव में अपनी चीज नहीं है, उसे व्यक्त करने का पागलपन करती है,—शरमा जाता हूँ, पर क्या करूँ, निकलने का दरवाजा जो बन्द है। जानती नहीं, मेरे डैने छिन्न-भिन्न हो गये हैं, दोनों पाँव ठिठुर जाने से बेड़ी लग गई है। अपने देश में अपना स्थान चुन लेने की जिम्मेवारी अपनी ही शक्ति पर है, वह शक्ति मुझमें थी। क्यों तुमने मुझे वह बात भुलवा दी।"

क्लिष्ट कंठ से एला ने कहा—"तुम भूले क्यों, अन्तू?"

"भुलाने की शक्ति तुम लोगों की अमोघ है, नहीं तो भूलने के कारण मैं लज्जित होता। मैं हजार बार मानूँगा कि तुम मुझे भुला सकती हो; अगर न भूलता, तो अपने पौरुष पर मुझे सन्देह होता।"

"अगर यही बात है, तो मुझे डाँट क्यों बता रहे हो?"

"क्यों? यही तो बतला रहा हूँ। भुलाकर तुम वहीं ले जाओ, जहाँ तुम्हारी अपनी दुनिया है, अपना अधिकार है। दल की बात प्रतिध्वनि के रूप में कही जाय, तो कहना होगा कि तुम कुछ लोगों ने संसार में सिर्फ एक ही कर्त्तव्य का मार्ग बाँध रखा है। तुम

लोगों के पत्थर के बने उस सरकारी कर्तव्य-पथ पर मेरा जीवन-स्रोत बार-बार चक्कर खा-खाकर अपनी गति खो बैठता है।"

"सरकारी कर्तव्य ?"

"हाँ, तुम लोगों का स्वदेशी कर्तव्य यानी जगन्नाथ का रथ। मन्त्रदाता ने कहा, सब मिलकर एक मोटे रस्से को कन्धे पर लेकर खींचते रहो आँखें मींचकर—बस, यही एकमात्र काम है। हजारों लड़के कमर बाँधकर लगे रस्सा खींचने। कितने ही पहिये के नीचे आ पड़े और कितने ही जिन्दगी भर के लिए पंगु हो गये। इतने में वापसी रथ का मन्त्र पढ़ा जाने लगा। रथ लौटा। जिनकी हड्डियाँ टूट चुकी थीं, उनकी तो हड्डियाँ जुड़ने से रहीं; आखिर पंगुओं को झाड़-बुहारकर रास्ते के किनारे धूल के ढेर में डाल दिया गया। अपनी शक्ति पर भरोसा यानी आत्म-विश्वास की तो शुरू से ही ऐसी रेढ़ मार दी गई थी कि सभी कोई अपन को सरकारी खिलौने के साँचे में ढाल देने के लिए स्पर्द्धा के साथ राजी हो गये। सरदार के रस्सा खींचते ही जब सबों ने नाच नाचना शुरू कर दिया, तब आश्चर्य के साथ सोचने लगे—इसी को कहते हैं शक्ति का नाच। नाचनेवाले ने ज्यों ही जरा ढील दी, त्यों ही हजारों मानस-खिलौने रद्द कर दिये गये।"

"अन्तू, उनमें से बहुत से जो पागलों की तरह कदम बढ़ाने लगे, ताल को ठीक न रख सके।"

"शुरू से ही जानना चाहिए था कि आदमी ज्यादा देर तक सुतली-नाच नहीं नाच सकता। माना कि मनुष्य के स्वभाव को संस्कार भी बनाया जा सकता है, पर उसमें समय लगता है। स्वभाव का गला घोंटकर मनुष्य को कठपुतली बना देने से काम आसान हो जाता है, यह समझना भूल है। मनुष्य को आत्म-शक्ति का वैचित्र्यवान् जीव समझना सत्य ही है। मुझे अगर वैसा ही

जीव समझकर श्रद्धा करतीं, तो मुझे तुम अपने इस गुट में न खींच लातीं, बल्कि हृदय से लगातीं।"

"अन्तू, शुरू में ही मुझे तुमने अपमानित करके क्यों नहीं भगा दिया? क्यों मुझे अपराधी बनाया?"

"यह तो तुमसे बार-बार कहा है। तुम्हारे साथ मैं मिल जाना चाहता था, बात अत्यन्त सहज थी। लोभ तो दुर्जय था ही,—और प्रचलित मार्ग भी बन्द थे। आखिर जान हथेली पर रख के चल पड़ा टेढ़े मार्ग से। तुम मुग्ध हो गईं। आज मालूम हो गया कि इसी रास्ते मरना होगा। मेरी वह मौत जब पूरी हो चुकेगी, तब तुम मुझे दोनों हाथ बढ़ाकर वापस बुलाओगी—रात और दिन हमेशा अपने शून्य हृदय के पास बुलाती रहोगी।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इस तरह मत कहो।"

"बेवकूफ-सा बक रहा हूँ, रोमान्टिक-सा सुनाई दे रहा है। मानो देहहीन वस्तुहीन पाने को ही पाना कहते हों! मानो तुम्हारा उस दिन का विरह आज के प्रतिहत मिलन की कीमत एक कौड़ी भी चुका सकता है!"

"आज तुम्हें बातों ने पकड़ लिया है, अन्तू!"

"क्या कहती हो! आज पकड़ा है! हमेशा से पकड़ रखा है। जब मेरी उमर कम थी, अच्छी तरह मुँह भी नहीं खुला था, तभी उस मौन अन्धकार के भीतर से बातें फूट-फूटकर निकलना चाहती थीं, कितनी उपमाएँ, कितनी तुलनाएँ कितनी असंलग्न बातें कोई ठीक है! जब उमर पर आया, साहित्यालोक में प्रवेश किया, तो देखा कि इतिहास के हर रास्ते पर राज्य-साम्राज्य के भग्न स्तूप हैं, देखा कि वीरों की रण-सज्जाएँ छिन्न-भिन्न पड़ी हैं, विदीर्ण जयस्तम्भों की दरारों में से पीपल के पौधे निकल रहे हैं,—अनेक शताब्दियों के अनेक प्रयास धूल के स्तूपों में स्तब्ध

पड़े हैं। समय के उस कूड़े-करकट के ढेर के ऊपर सिर्फ एक अटल वाणी का ही सिंहासन दिखाई दिया। उस सिंहासन के चरणों के पास युग-युगान्तर की तरंगें साष्टांग लोट रही हैं। कितने ही दिन मैंने कल्पना की है कि मैं उस सिंहासन के स्वर्ण-स्तम्भों पर अलंकार रचने का भार लेकर आया हूँ। तुम्हारे अन्तू को आज से नहीं, हमेशा से बातों ने पकड़ रखा है। उसे तुम कभी भी, किसी दिन, ठीक-ठीक पहचान सकोगी, इसकी आशा अब नहीं रही।—उफ, उसे तुमने अपने दल के शतरंज के मुहरों में दाखिल कर लिया!"

एला ने चौकी से उतरकर अतीन के पैरों पर अपना सिर रख दिया। अतीन ने उसे उठाकर पास बिठा लिया। कहा—"तुम्हारी इस छरहरी देह को मैंने अपनी बातों से ही मन ही मन सजाया है, तुम मेरी संचारिणी पल्लविनी लता हो, तुम मेरी 'सुखमिति वा दुःखमिति वा' हो। मेरे चारों तरफ अदृश्य आवरण है—वाणी का आवरण, साहित्य की अमरावती से आकर वह भीड़ को सँभाले रखता है। मैं चिरस्वतन्त्र हूँ, इस बात को जानते हैं तुम्हारे मास्टर साहब, फिर भी मुझे विश्वास क्यों करते हैं?"

"इसी लिए विश्वास करते हैं। सबके साथ मिलने के लिए तुम्हें उनके बराबर उतरना पड़ता है। तुम स्वयं किसी भी तरह नीचे उतर नहीं सकते। तुम पर मेरा विश्वास इसी लिए है। कोई भी स्त्री किसी भी पुरुष को इतना विश्वास नहीं कर सकी होगी। तुम यदि साधारण पुरुष होते, तो साधारण स्त्री की तरह ही मैं तुमसे डरा करती। निर्भय है तुम्हारा संग।"

"धिक् है उस निर्भय को। भय होता, तो कम से कम उस पुरुष की उपलब्धि तो करतीं। देश के लिए दुःसाहस का दावा करती हो तो अपने जैसी महीयसी के लिए क्यों न

करोगी ? कापुरुष हूँ मैं। जसम्मति के निषेध को भेदकर क्यों मैं तुम्हें जबरदस्ती हरण करके न ले जा सका बहुत पहले ही, जब कि समय हाथ में था ? भद्रता ! प्रेम तो बर्बर होता है ! उसकी बर्वरता पहाड़ हटा देती है अपना रास्ता करने के लिए। पागल झरना है वह, सभ्य शहरों का पालतू नल का पानी नहीं !"

एला चट से उठ खड़ी हुई, बोली—"चलो अन्तू, भीतर चलो।"

अतीन भी उठकर खड़ा हो गया, बोला—"डर ! इतने दिनों बाद डर शुरू हुआ ! जीत हो गई मेरी। पहले-पहल जब यौवन आया, तब तक स्त्रियों को नहीं पहचाना। कल्पना में उन्हें दुर्गम दूर रखकर देखा है; यह प्रमाणित करने का समय निकल गया कि तुम लोग जो चाहती हो, वही मैं चाहता हूँ। भीतर से मैं पुरुष हूँ, बर्बर उद्दाम। समय को अगर न खोता, तो अभी तुम्हें वज्र बन्धन से धर दबाता, तुम्हारी पसलियाँ चरमरा उठतीं; तुम्हें सोचने का समय ही न देता, रोने के लिए साँसें भी तुममें बाकी न छोड़ता, निष्ठुर की तरह खींच ले जाता तुम्हें अपने कक्ष के मार्ग में। आज जिस मार्ग में आ पड़ा हूँ, वह मार्ग तलवार की धार के समान संकीर्ण है, वहाँ एक साथ दो जनों के चलने की जगह ही नहीं।"

"मेरे डाकू, जबरदस्ती छीन ले जाने की जरूरत नहीं तुम्हें। लो, यह लो, मैं तुम्हारी ही हूँ।"

कहते-कहते दोनों हाथ बढ़ाकर वह अतीन के पास पहुँच गई और आँखें मींचकर उसकी छाती से लगकर उसने उसके मुँह की तरफ अपना मुँह बढ़ा दिया।

खिड़की में से एला ने सड़क की तरफ जो देखा, तो सहसा चौंककर बोली—"गजब हो गया ! वह देखो, देखते हो ?"

"क्या ?"

"उस चौराहे पर। जरूर बटू है वह—यहीं आ रहा है।"

"आने लायक जगह को वह जानता है।"

"उसे देखते ही मेरा सारा शरीर संकुचित हो उठता है। उसके स्वभाव में मांस बहुत-सा है, बहुत चरबी है। जितनी ही मैं उससे बचने की कोशिश करती हूँ—अपने से उसे दूर रखना चाहती हूँ, उतना ही वह पास आ जाता है। गन्दा है, गन्दा है वह आदमी।"

"मुझे वह देखे नहीं सुहाता, एला!"

उसके बारे में अनुचित कल्पना करने के कारण मैं अपने को शान्त करने की बहुत कोशिश करती हूँ—पर किसी भी तरह कर नहीं पाती। दूर से उसकी फटी-फटी आँखें अपने लालायित स्पर्श से मानो मेरा अपमान किया करती हैं।"

"उसकी कुछ परवा न करो, एला! मन ही मन उसके अस्तित्व की बिलकुल उपेक्षा नहीं कर सकतीं?"

"उससे मैं डरती हूँ, इसी लिए वह ध्यान से हटाये नहीं हटता। उसका एक भीतर का चेहरा मुझे दिखाई देता है—बिलकुल अष्टपद जन्तु की तरह। मालूम होता है, वह अपने भीतर से आठों चिपचिपे गन्दे पैर निकालकर किसी दिन मुझे असम्मान से जकड़ डालेगा—निरन्तर इसी बात का षड्यन्त्र कर रहा है। इस बात को तुम नासमझ औरतों की आशंका समझकर हँसी में उड़ा सकते हो, पर यह सच है कि भूत की तरह यह मेरे सिर पर सवार है। सिर्फ अपने तई नहीं, तुम्हारे लिए मुझे और भी डर लगता है,—मैं जानती हूँ तुम्हारी तरफ उसकी ईर्ष्या साँप के फन की तरह फुस-कार रही है।"

"एला, ऐसे जानवरों में साहस नहीं होता, सिर्फ बदबू होती है, इसी से उन्हें कोई छेड़ना नहीं चाहता। मगर मुझसे वह

सर्वान्त:करण से डरता है, इसलिए नहीं कि मैं भयङ्कर हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं उससे बिलकुल भिन्न जाति का हूँ।"

"देखो अन्तू, जीवन में मैंने अनेक दुःख और विपत्तियों की सम्भावना सोच रखी है, उनके लिए मैं तैयार भी हूँ—पर इतना हमेशा चाहती हूँ कि किसी दिन किसी दुर्घटना में उसके कवल में न पड़ूँ, उससे तो मौत अच्छी।" कहते हुए उसने अतीन का हाथ पकड़कर दबा लिया, जैसे अभी तुरन्त ही उद्धार करने का समय आ गया हो।

"जानते हो अन्तू, हिंस्र जन्तु के हाथ से अपमृत्यु की कल्पना कभी-कभी मन में आती है, तब देवता से कहती हूँ—शेर या भालू खा जाय, सो भी अच्छा, पर ऐसा हरगिज न हो कि मुझे मगर कीचड़ में खींच ले जाकर सड़ा-सड़ाकर खाय।"

"मेरी शुमार क्या शेर-भालुओं में की गई है?"

"नहीं जी, तुम मेरे नरसिंह हो, तुम्हारे हाथ से मरने में ही मेरी मुक्ति है। वह सुनो, पैरों की आहट। ऊपर ही आ रहा है।"

अतीन ने कमरे से निकलकर जोर गले से कहा—"बटू, यहाँ नहीं, चलो नीचे की बैठक में।"

बटू ने कहा—"एला जीजी—"

"एला जीजी अभी कपड़े बदलने गई हैं, चलो नीचे।"

"कपड़े बदलने? इतनी देर से? साढ़े आठ—"

"हाँ हाँ, मैंने ही देर करा दी है।"

"सिर्फ एक बात है। पाँच मिनट।"

"वे बाथ-रूम में गई हैं। कह गई हैं, उनके खास कमरे में कोई आवे, यह वे नहीं चाहतीं।"

"आप?"

"मेरे सिवा।"

बटू ओठों में मुस्कराया, उसका मुस्कराना बिलकुल स्पष्ट और व्यंग्यपूर्ण था। बोला—"हम लोग हमेशा से हैं, सो तो रह गये व्याकरण के साधारण नियमों में, और आपको दो दिन भी आये न हुए कि आप चट से चढ़ गये आर्षप्रयोग में ! एक्सेप्शन फिसलने का रास्ता है, ज्यादा दिन टिकने का नहीं, इसी सो छोड़ दिया।"—कहकर जल्दी से जूता खटखटाता हुआ नीचे चला गया।

एक छोटी सी आरी हाथ में लिये, उसे हिलाता हुआ, अखिल आ पहुँचा, बोला—"चिट्ठी है।" अपने सृष्टि-कार्य को वह अधूरा छोड़कर चला आया था।

"तुम्हारी जीजी रानी की ?"

"नहीं, आपकी। आपके ही हाथ में देने को कहा है।"

"किसने ?"

"पहचानता नहीं।"—कहकर चिट्ठी देकर चला गया। चिट्ठी के कागज का लाल रङ्ग देखते ही अतीन समझ गया कि यह खतरे का सिग्नल है। गुप्त भाषा में लिखी चिट्ठी पढ़ी, उसमें लिखा था—"एला के घर अब नहीं, उसे बिना कुछ जताये ही इसी वक्त चले आओ !"

कार्य के जिस शासन को उसने स्वीकार कर लिया है, उसके असम्मान को वह आत्म-सम्मान के विरुद्ध ही समझता है। चिट्ठी को उसने बाकायदा टुकड़े टुकड़े करके फेंक दिया। क्षण भर के लिए वह बंद बाथ-रूम के बाहर स्तब्ध होकर खड़ा रहा। फिर तेजी से बाहर निकल गया। सड़क पर खड़े होकर उसने एक बार ऊपर की खिड़की की ओर देखा। खिड़की खुली थी, बाहर से आराम-कुरसी का थोड़ा सा हिस्सा दीख रहा था, और उसके साथ लाल-पीली धारियोंवाला चौखूँटे तकिए का एक कोना भी दिखाई दिया। अतीन चट से उछलकर चलती ट्राम पर सवार हो गया।

तीसरा अध्याय

चारों ओर एक-दूसरे से सटे हुए फीके हरे गहरे हरे पीले हरे खाकी हरे रङ्गों के पेड़-पौधों और झुरमुटों की निविड़ता छाई हुई है। इधर-उधर कुछ तलैयाँ हैं, जिनमें पानी के बजाय बाँस की सड़ी पत्तियाँ और कीचड़ भरा हुआ है। इस निविड़ता के बीच से टेढ़ी-मेढ़ी बल खाती हुई एक कच्ची सड़क गई है, जिसे बैलगाड़ी के पहियों ने बुरी तरह रौंद डाला है। कहीं आलू और अरुई है तो कहीं घंटाकरन, नागफनी और सेंहुड़ आदि जङ्गली पौधे। मेंड़ से घिरे हुए धान के खेतों में पानी भरा दीखता है। सड़क गंगा के घाट तक जाकर खतम हो गई है। पुराने जमाने की लखौरी ईंटों से बना हुआ टूटा-फूटा घाट तिरछा हो गया है, और गंगा कुछ उतर जाने से सामने कछार पड़ गया है। घाट से कुछ दूर आगे चलकर गंगा-किनारे एक जंगल-सा पड़ता है। उसमें एक खँडहर मकान है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसकी अभिशप्त छाया में डेढ़ सौ वर्ष पहले के किसी मातृ-हत्याकारी पातकी के भूत ने डेरा डाल रखा है। बहुत दिनों से किसी सजीव सत्वाधिकारी ने उस अशरीरी के विरुद्ध अपना कोई दावा उपस्थित करने की कोशिश तक नहीं की।

यहाँ का दृश्य है—परित्यक्त टूटा-फूटा पूजा का दालान और उसके सामने ऊबड़-खाबड़ लम्बा-चौड़ा आँगन, जिसमें जगह जगह काई जमी हुई है। कुछ दूरी पर नदी के किनारे गिरता हुआ खँडहर मन्दिर, टूटा-फूटा रासमंच, पुरानी दीवारों का

भग्नावशेष और कछार पर वटवृक्ष की जटाओं में छिपी हुई एक टूटी-फूटी नाव का ढाँचा पड़ा हुआ है।

फिलहाल यहीं पर अतीन का वासस्थान है। लगभग शाम को अतीन के उस छायाच्छन्न दालान में कन्हाई गुप्त आ पहुँचे। अतीन चौंक पड़ा, क्योंकि यहाँ का पता कन्हाई को मालूम न होना चाहिए था।

"आप यहाँ!"

कन्हाई ने कहा—"जासूसी करने निकला हूँ।"

"मजाक को जरा समझा दीजिए।"

"मजाक नहीं। मैं तुम लोगों को रसद पहुँचानेवालों में से एक मामूली-सा आदमी हूँ। चाय की दूकान में शनि ने प्रवेश किया, तो निकल पड़ा वहाँ से। अन्त में उन्हीं के जासूसी रजिस्टर में नाम लिखवा आया। मरघट का रास्ता छोड़कर जिनके सामने दूसरा कोई रास्ता ही नहीं, उनके लिए यह ग्रैण्ड ट्रंक रोड है,—देश की छाती पर पूरब से लेकर पश्चिम तक सीधा चला गया है।"

"चाय बनाने का काम छोड़कर अब खबरें बना रहे हैं?"

"बनाने से यह रोजगार नहीं चलता। विशुद्ध खालिस खबरें ही देनी पड़ती हैं। जो शिकार जाल में फँस चुका है, मैं उसकी फाँस खींच देता हूँ। तुम्हारे हरेन की साढ़े पन्द्रह आने खबरें उनके पास पहुँच चुकी हैं, आखिरी ज्यादती की खबर मैंने दे दी है। वह अभी जलपाइगुड़ी की सरकारी धर्मशाला में होगा।"

"अब शायद मेरी पारी है?"

"ढंग तो ऐसे ही दिखाई देते हैं। बटू ने बहुत कुछ रास्ता तैयार कर दिया है। मेरे हिस्से में जितना आया है, उसमें तुम्हें

कुछ समय मिलेगा। पिछले मकान में रहते हुए अचानक तुम्हारी डायरी खो गई थी। याद है?"

"हाँ, खूब याद है।"

"वह जरूर पुलिस के हाथ पड़ जाती, इसलिए मुझे ही चुरानी पड़ी।"

"आपने!"

"हाँ, जिसका साधु-संकल्प होता है, उसके भगवान् सहाय होते हैं। एक दिन तुम उसे लिख रहे थे, मेरे ही कौशल से पाँच मिनट के लिए तुम चले गये बाहर,—उसी समय उड़ा दी।"

अतीन ने माथे पर हाथ रखकर कहा—"सब पढ़ी है आपने?"

"जरूर पढ़ी है। पढ़ते-पढ़ते रात के डेढ़ बज गये। बँगला भाषा में इतना तेज, इतना रस है, मैं पहले यह नहीं जानता था। उसमें बहुत-सी गुप्त बातें थीं; पर वे ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में नहीं।"

"आपने यह अच्छा काम किया?"

"कितना अच्छा किया, सो मैं नहीं कह सकता। तुम साहित्यिक हो, डायरी भर में कहीं भी तुमने छोटी-मोटी या ऊहापोह की बातें नहीं लिखीं, किसी का नाम तक नहीं लिया। सिर्फ भावों की दृष्टि से देखा जाय, तो उसमें इतनी घृणा, इतनी अश्रद्धा की बू आती है कि अगर किसी पेन्शनयाफ्ता मन्त्री-पदप्रार्थी की कलम से निकलती, तो राज-दरबार में वह मोक्ष तक प्राप्त कर सकता था। बटू अगर तुम्हारे पीछे न भी पड़ता, तो वह डायरी ही तुम्हारे ग्रह-स्वस्त्ययन का काम करती।"

"कहते क्या हैं! सब पढ़ ली आपने?"

"हाँ, पढ़ी तो पूरी ही है। क्या कहूँ, बेटा जी, मेरे अगर लड़की होती और ऐसा साहित्य अगर वह तुम्हारी कलम से निकलवा सकती, तो अपने पितृपद को मैं सार्थक मानता। सच कहता हूँ, तुम्हें गुट में मिलाकर भाई साहब इन्द्रनाथ ने देश की हानि ही की है।"

"आपके इस रोजगार की खबर दलवालों को सबको मालूम है ?"

"किसी को नहीं।"

"मास्टर साहब को ?"

"वे बुद्धिमान् ठहरे, अन्दाज लगा सकते हैं; पर मुझसे पूछा नहीं और न मैंने कहा अभी तक।"

"मुझसे कहा है जो !"

"यही तो आश्चर्य की बात है। मुझ जैसा सन्देहजीवी मनुष्य अगर किसी पर विश्वास न कर सके, तो दम घुटने लगता है। मैं भावुक नहीं, बेवकूफ भी नहीं, इसी से डायरी नहीं रखता; अगर रखता, तो तुम्हारे हाथ सौंपकर मन का धुआँ निकाल देता।"

"मास्टर साहब—"

"मास्टर साहब को खबरें दी जा सकती हैं, पर मन नहीं खोला जा सकता। इन्द्रनाथ का मैं प्रधान मन्त्री हूँ, पर उनकी सब बातें मुझे मालूम हों, इसकी कल्पना भी न करना। ऐसी बातें भी हैं, जिनकी कल्पना करने की भी हिम्मत नहीं पड़ती। मेरा विश्वास है, हमारे दल से जो अपने आप ही झड़ने लगते हैं, इन्द्रनाथ मेरी तरह ही उन्हें झाड़-पोंछकर फेंक देते हैं पुलिस के कूड़ेखाने में। काम है तो गर्हित, पर निष्पाप है। पहले से कहे देता हूँ, किसी दिन उनकी या मेरी ही सहायता से तुम्हारे हाथों में अन्तिम हथकड़ी पड़ेगी, तब कुछ खयाल मत करना, अच्छा। तुम्हारे यहाँ आने की खबर पहले-पहल बटू ही ने थाने के

कानों तक पहुँचाई है। लिहाजा मुझे भी बाजी मारनी पड़ी। मैंने फोटोग्राफ के साथ प्रामाणिक खबर पहुँचाई। अब काम की बात कहता हूँ, सुनो। तुम्हें चौबीस घंटे का समय देता हूँ। इसके बाद भी अगर तुम यहीं बने रहे, तो मैं ही तुम्हें थाने के रास्ते तक पहुँचा दूँगा। यहाँ से कहाँ जाना होगा, विस्तार के साथ उसका नक्शा दिया जाता है—इसके हरूफ तो तुम जानते ही हो, फिर भी कंठस्थ करके इसे फाड़ फेंको। यह लो मैप। रास्ते के इस तरफ तुम्हारा ठिकाना है, स्कूल के कोने के घर में। उसके ठीक सामने ही थाना है। वहाँ एक राइटर-कान्स्टेबिल मिलेगा तुम्हें। दूर के रिश्ते में वह मेरा नाती लगता है, नाम है राघव बयाल। पछाँह रहते उसे तीन पुश्तें गुजर चुकीं। तुम्हें मास्टरी का काम मिला है। वहाँ पहुँचते ही राघव तुम्हारे ट्रंक-बंक देखेगा, कपड़ों की तलाशी लेगा, एक-आध रौंदे-औंदे भी जमायेगा। उसे तुम भगवान् की दया समझ कर झेल लेना। रघुवीर की हिन्दी भाषा में हर वक्त यह तत्त्व प्रकट होता रहता है कि बंगाली-मात्र उसकी सुसराल के रहनेवाले हैं। तुम प्रतिवाद करने की कोशिश मत करना और जीते-जी कभी इधर मत आना। साइकिल बाहर पड़ी है, इशारा पाते ही सवार होकर चल देना। अब आओ, बेटा जी, अन्तिम बार गले लग लें।"

गले लगकर कन्हाई चल दिया वहाँ से।

अतीन चुपचाप बैठा रहा। अपने भीतर की ओर दृष्टि दौड़ाकर देखने लगा। असमय में आ पहुँचा उसके जीवन-नाटक का अन्तिम अंक, यवनिका अब गिरने ही वाली है, प्रकाश अब बुझने ही वाला है। यात्रा शुरू हुई थी निर्मल प्रभात के प्रकाश में, वहाँ से आज बहुत दूर आ पहुँचा है। चलते समय हाथ में जो तोशा था, वह भी कुछ नहीं बचा। मार्ग के अन्तिम भाग में तो उसने अपने को सिर्फ ठग-ठगकर ही पेट भरा है। एक दिन सहसा रास्ते के मोड़ पर सौन्दर्य का अपूर्व दान लेकर जो भाग्यलक्ष्मी

उसके सामने आ खड़ी हुई थी, मानो वह अलौकिक थी ! ऐसा अपरिसीम ऐश्वर्य उसके इस जीवन में कभी प्रत्यक्ष हो सकता है, इस बात की कल्पना भी उसके दिमाग में न आई थी, सिर्फ काव्य और इतिहास में उसका कल्परूप देखा था। बार-बार उसके मन में आया है कि दान्ते और बियात्रिचे नया जन्म ले रहे हैं हम दोनों में। उस ऐतिहासिक प्रेरणा ने ही उसके मन के भीतर बातें की हैं, दान्ते की तरह ही वह राष्ट्रीय क्रान्ति के भँवर में कूद पड़ा था; मगर उसमें सत्य कहाँ, वीर्य कहाँ, गौरव कहाँ; देखते-देखते अनिवार्य वेग से जिस कीचड़ की ओर वह खिंचता चला गया, उस नकाबपोश चोरी-डकैती खून-खराबी के अन्धकार में इतिहास का आलोक-स्तम्भ कभी न खड़ा होगा। आत्मा का सर्वनाश करके अन्त में आज वह देख रहा है कि कोई भी वास्तविक फल नहीं है उसमें, निःसन्देह पराभव है सामने। पराभव का भी मूल्य है, पर आत्मा के पराभव का नहीं, जो उसे गुप्तचारिणी वीभत्स विभीषिका में खींच लाया है, जिसका न अर्थ है और न अन्त।

दिन का प्रकाश क्रमशः म्लान हो गया। आँगन में झींगुर बोलने लगे। पास की कच्ची सड़क से बैलगाड़ी जा रही थी, उसका आर्तस्वर सुनाई देने लगा।

इतने में सहसा आँधी की तरह बड़ी तेजी से एला वहाँ आ पहुँची। ऐसी अव्यवस्थित रूप में घबराई हुई आई कि जैसे आत्म-हत्या के लिए झोंक में आकर पानी में कूदने जा रही हो। अतीन के उछलकर खड़ा होते ही वह उसकी छाती पर जा पड़ी। भर्राये हुए स्वर में बोली—"अतीन, अतीन, नहीं रहा गया।"

अतीन ने धीरे से उसे छुड़ाकर अपने सामने खड़ा कर लिया और उसके अश्रु-सिक्त मुखड़े की ओर देखता रहा। बोला—"एली, क्या काण्ड कर डाला तुमने ?"

उसने कहा—"मुझे नहीं मालूम, क्या किया ?"

"यहाँ का पता कैसे मालूम हुआ ?"

एला ने गहरे अभिमान के साथ उलाहने भरे स्वर में कहा—"तुमने तो नहीं बताया अपना ठिकाना ?"

"जिसने तुम्हें बताया है, वह तुम्हारा हितैषी नहीं है ।"

"यह भी मैं निश्चित जानती हूँ, पर तुम्हारी कुछ राह का पता न मिलने से मेरा मन शून्य में उड़ता रहता था, असह्य हो उठा वह मेरे लिए। हितैषी-अहितैषी का विचार करने लायक अवस्था नहीं रही मेरी। कितनी मुद्दत से तुम्हें नहीं देखा, बताओ तो !"

"धन्य हो तुम !"

"तुम धन्य हो, अन्तू ! ज्यों ही मेरे घर आने की मनाही हुई, त्यों ही तुमने उसे मान लिया ! कैसे हुआ तुमसे ?"

"यह तो मेरी स्वाभाविक स्पर्द्धा है। प्रचण्ड इच्छा ने मुझे अजगर की तरह दिन-रात घूम-घुमाकर पीस-पीस मारा है, फिर भी उसे मैं मान नहीं सका। वे मुझे बताते हैं सेन्टिमेन्टल—भावुक, उन लोगों ने मन में विचार लिया था कि संकट के समय प्रमाणित हो जायगा कि मैं गीली मिट्टी का ही बना हूँ। वे सोच ही नहीं सकते कि भावुकता ही मेरी अमोघ शक्ति है।"

"मास्टर साहब भी इस बात को जानते हैं।"

"एली, ब्रिटिश-साम्राज्य में इस भुतही मुहल्ले की सृष्टि होने के बाद से आज तक किसी बंगाली भद्र महिला ने इस स्थान का स्वरूप निर्धारण नहीं किया।"

"उसका कारण यह है कि बंगाल की किसी भद्र महिला के भाग्य में इतनी बड़ी गरज ऐसे दुःसह रूप में किसी दिन प्रकट नहीं हुई।"

"परन्तु एली, आज तुमने जो काम किया है, वह अवैध है।"

"जानती हूँ इस बात को, अपनी कमजोरी को मानती हूँ मैं, फिर भी तोड़ूँगी नियम; सिर्फ अपनी ही तरफ से नहीं बल्कि तुम्हारी

तरफ से भी। रोज मेरा मन कहा करता है, तुम बुला रहे हो मुझे। उसका जवाब बिना दिये मेरे प्राण जो हाँफने लगते हैं। बताओ, मेरे आने से तुम खुश हुए हो ?"

"इतना खुश हुआ हूँ कि उसे साबित करने के लिए खतरे में पड़ने को भी राजी हूँ।"

"नहीं, नहीं, तुम खतरे में क्यों पड़ोगे ? जो कुछ आफत आये, मुझ पर आये। तो अब मैं जाती हूँ, अन्तू !"

"हरगिज नहीं। तुम नियम तोड़ के चली आई हो, मैं नियम तोड़ के तुम्हें जकड़े रहूँगा। आओ, दोनों मिलकर अपराध को समान कर लें। नये आश्चर्य के रूप में एक दिन तुम्हारे मुखड़े को देखा था वसन्ती रंग में, आज वह युगान्तर तक पिछड़ गया है। आओ, आज उस दिन का आह्वान किया जाय इस खँडहर में। आओ, और भी पास आ जाओ।"

"ठहरो, जरा घर सँभाल लेने की कोशिश कर लूँ।"

"हाय हाय, गंजी चाँद पर कंघी फेरने की कोशिश !"

एला ने एक बार चारों तरफ देख लिया। जमीन पर कम्बल बिछा था और उस पर चटाई। तकिये की जगह किताबों से भरा कैन्वस का एक पुराना थैला पड़ा था। लिखने-पढ़ने के लिए एक चीड़ का बकस था, और एक कोने में सिकोरे से ढकी हुई गागर रखी थी। टूटी टोकरी में कुछ केले पड़े थे और उसी में एक एनामेल की दचकी हुई कटोरी, जो मौके-बेमौके चाय पीने के काम आती है। दूसरे कोने में एक बड़ा चौड़ा सन्दूक है, उस पर मिट्टी की बनी गणेश जी की मूर्ति विराजमान है। उससे प्रमाणित होता है कि यहाँ अतीन का कोई और साथी भी रहता है। एक खम्भे से लेकर दूसरे खम्भे तक रस्सी बँधी हुई है, जिस पर तरह तरह के रंगों के दाग लगे हुए

कई मैले अँगौछे पड़े हैं। घर भर में नमी की दम घुटानेवाली गन्ध है।

ठीक ऐसा न सही, पर इसी, ढंग के दृश्य और भी देखे हैं एला ने। उससे विशेष दुःख नहीं हुआ उसे, बल्कि त्याग-वीर युवकों को उसने मन ही मन शाबासी दी है। एक बार उसने किसी जंगल के किनारे अनिपुण हाथों से बने चूल्हे का भग्नावशेष देखा था, जिसके चारों ओर जले हुए चावल बिखर रहे थे। वह उसे राष्ट्रीय क्रान्ति के रोमान्स के अंगारों से बनी हुई तसवीर सी मालूम हुई है; पर आज दुःख और वेदना से उसका गला रुँध आया। आराम के आलिंगन में पड़े हुए धनी युवकों की अवज्ञा करना ही एला का स्वभाव था। परन्तु अतीन को इस अपरिच्छिन्न मलिन अभावजन्य दरिद्रता में देखकर उससे अपना मन मिला न सकी।

एला के उद्विग्न मुँह की ओर देखकर अतीन ने हँसकर कहा—"मेरे ऐश्वर्य को स्तम्भित होकर देख रही हो। उसका विराट अंश नहीं दिखाई देता, इसी से तुम विस्मित हो। हम लोगों को पैर हलके रखने पड़ते हैं—जिससे भागते समय कोई टोक न सके, न कोई चीज ही रोक सके। कुछ दूरी पर जूट-मिल के मजदूरों की बस्ती है, वे मुझे मास्टर बाबू कहते हैं। मुझसे चिट्ठी पढ़वा लेते हैं, खत लिखवा लेते हैं और समझ लेते हैं कि लेन-देन की रसीद ठीक हुई या नहीं। उनमें किसी किसी को सन्तान-वात्सल्य का भी शौक है, वे चाहते हैं लड़के को मजदूर-श्रेणी से उठाकर हजूर-श्रेणी में दाखिल करें। मेरी सहायता चाहते हैं,—कोई भेंट में फल-फलारी लाता है तो कोई घर की गाय का दूध।"

"अन्तू, उस कोने में जो सन्दूक पड़ा है, वह किसकी सम्पत्ति है?"

"कुठौर पर और अकेला रहने से ही वह बड़े रूप में दिखाई देता है। अलक्ष्मी की झाड़ू में लगकर रास्ते से वह यहाँ आ पहुँचा है,—एक मारवाड़ी का है, तीसरी बार दिवालिया हुआ है बेचारा। मुझे शक हो रहा है, शायद दिवालिया होना ही उसका मुख्य व्यवसाय है। यह खँडहर उसके दो भतीजों की ट्रेनिंग एकाडेमी है। दोनों लड़के तड़के ही सत्तू खाकर काम करने आते हैं, बस्ती की मजदूरिनों के लिए सस्ते दामों के कपड़े रँगते हैं, बेचकर मूलधन का ब्याज देते हैं, मूल भी कुछ कुछ चुकाते जाते हैं। ये जो मिट्टी की नादें देख रही हो, इन्हें मैं अपने यज्ञ के नैवेद्य के काम में नहीं लाता,—इनमें रंग घोला जाता है। कपड़े उठाकर उस बकस में रख जाते हैं। इसके सिवा उसमें बस्ती की स्त्रियों के काम की तरह तरह की शृंगार की सामग्रियाँ भी हैं,—बिल्लौरी चूड़ियाँ, कंघे, छोटे आईने, बाजूबन्द वगैरह-वगैरह। रक्षा करने का भार है मेरे ऊपर और भूतों पर। दोपहर के बाद तीन बजे सौदा बेचने चला जाता है, फिर यहाँ नहीं आता। कलकत्ते का मारवाड़ी है, न मालूम किस चीज की दलाली करता है। मुझे अँगरेजीदाँ जानकर इसी लोभ से मुझे अपना साझीदार बनाना चाहता था, जीव पर दया करके मैं राजी नहीं हुआ। मेरी आर्थिक अवस्था की भी खोज लगाने की कोशिश की थी; मैंने समझा दिया कि पुरखों के पास जो कुछ था, उसका चौदह आना हिस्सा उन्हीं के पुरखों के घर पहुँच गया है।"

"यहाँ तुम्हारी कितने दिन की मियाद है?"

"अन्दाजन चौबीस घंटे की और समझो। इस आँगन में रस में विगलित नाना रंगों की लीला बराबर ज्यों की त्यों जारी रहेगी, पर अतीन विलीन हो जायगा पाण्डुवर्ण दूर-दिगन्त में। मैं मना रहा हूँ कि जिस मारवाड़ी को मेरी छूत लग चुकी है, उसे

हथकड़ी-महामारी न आ दबाये। अभी तक यह नहीं कहा जा सकता कि बिना मूलधन के यहाँ उसे मेरे भाग्य का भागी बनना पड़ेगा या नहीं।"

"तुम्हारा भावी पता क्या होगा ?"

"बताने का हुक्म नहीं है।"

"तो क्या मैं कल्पना भी न कर सकूँगी कि तुम कहाँ हो ?"

"कल्पना करने में क्या दोष है। मानस-सरोवर का तट अच्छा स्थान है।"

इसी बीच में थैले में से किताबें निकालकर एला उन्हें उलट-पुलटकर देख रही थी। काव्य हैं, कुछ अँगरेजी के और दो-चार बँगला के।

अतीन ने कहा—"अब तक इन्हें ढोता फिरा हूँ, इस डर से कि कहीं अपनी जात न भूल जाऊँ। इन्हीं के वाणीलोक में मेरा आदि-निवास था। पन्ने उलटते ही पेन्सिल से चिह्नित उसकी गली-कूचियों का पता लग जायगा। और आज! यह देखो, आँखें खोलकर!"

सहसा एला अतीन के पाँव पकड़कर जमीन पर लोट गई। बोली—"माफ करो अन्तू, मुझे माफ करो।"

"तुम्हें माफ करने की इसमें कौन सी बात है, एली? भगवान् अगर हैं और उनकी असीम दया अगर है, तो वे मुझे माफ करेंगे।"

जब तुम्हें जानती न थी, तब तुम्हें इस रास्ते में लाकर खड़ा किया है मैंने।"

अतीन हँसकर कहने लगा—"अपने ही पागलपन की फुल स्टीम से इस कुजगह आ पहुँचा हूँ, इतनी ख्याति भी न दोगी मुझे? मुझे नाबालिगों की श्रेणी में रखकर अभिभावकपना दिखलाओगी, यह मुझसे न सहा जायगा, पहले से कहे देता हूँ। इससे तो अच्छा

है मंच से उतर आओ, मेरे मुँह की ओर देखकर कहो—आओ आओ पिया, आधे आँचल पर आ बैठो।"

"सम्भव है कि ऐसा ही कहती, पर आज तुम इस तरह पागल कैसे हो उठे ?"

"पागल न होऊँ ? कहा न तुमने, अपने भुज-मृणाल के जोर से तुमने मुझे रास्ते पर निकाला है !"

"सच बात कहती हूँ तो गुस्सा क्यों होते हो ?"

"सच बात हुई ? मैं तो छिटककर आ पड़ा हूँ रास्ते पर अपने हृदयावेग से, तुम तो निमित्त-मात्र हो। और किसी श्रेणी की महिला का निमित्त पाता, तो अब तक गोरा-काला सम्मिलन क्लब में ब्रिज खेलता दिखाई देता, घुड़दौड़ के मैदान में गवर्नर के बक्स की ओर स्वर्गारोहण-पर्व की साधना करता। अगर साबित हो जाय कि मैं मूढ़ हूँ तो शान के साथ कहूँगा कि मूढ़ता स्वयं मेरी ही है, जिसको कि भगवद्दत्त प्रतिभा कहते हैं।"

"अन्तू, दुहाई है तुम्हारी, अब तुम फालतू बातें मत बको। तुम्हारी जीविका को मैंने ही बहा दिया है, इस दुःख को मैं कभी भूल नहीं सकती। मैं देख रही हूँ, तुम्हारे जीवन की जड़ उखड़ गई है।"

"इतनी देर में अब हुआ है उस नारी का प्रकाश, जो वास्तविक है। इतने ही में पकड़ाई दे जाती हो, देशोद्धार के रंगमंच पर तुम रोमान्टिक हो। जिस गृहस्थी में फूल की थाली में दूध-भात, साग-तरकारी परोसी जाती है, उसी के केन्द्र में बैठी हो तुम बीजना हाथ में लिये। जहाँ राजनैतिक लट्ठ का बोलबाला है, वहाँ तुम बिखरे हुए बाल और लाल लाल आँखों से आ पड़ती हो अप्रकृतिस्थ अवस्था की झोंक में, सहज बुद्धि से नहीं।"

"इतनी बातें भी तुम्हें कहनी आती हैं, अन्तू, तुमसे औरतें भी हार मान जायँगी।"

"औरतों को बातें करना भी आता है क्या ! वे तो सिर्फ बका करती हैं। बातों के भयंकर तूफान से सनातन मूढ़ता की भीत तोड़ने के लिए किसी दिन मन में आँधी के बादल जम उठे थे। उस मूढ़ता पर ही तुम अपनी जाति की तरफ से जयस्तम्भ चुनने चली हो शारीरिक बल पर।"

"तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे समझा दो, मेरी भूल से तुमने भूल क्यों की ? क्यों तुमने जीविका-वर्जन का दुःख अंगीकार किया ?"

"वह तो मेरी व्यंजना थी, एक रुख था, अँगरेजी में जिसे जेस्चर कहते हैं। वह मेरी अन्तिम समय की भाषा थी। अगर दुःख को न अंगीकार करता, तो मुँह मोड़कर चली जातीं; किसी भी तरह समझती ही नहीं कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। उस बात को मजाक में उड़ाकर यह मत कहो कि वह देश का प्रेम था !"

"देश क्या इसमें नहीं है, अन्तू ?"

"देश की साधना और तुम्हारी साधना एक हो गई है, इसी से देश इसमें है। किसी दिन बल-वीर्य के जोर से योग्यता दिखाकर नारी को प्राप्त करना पड़ता था। आज उसी मरण-प्रण का मौका मिला है मुझे। उस बात को भूलकर तुच्छ जीविका के अभाव से तुम्हें चोट पहुँची है, अन्नपूर्णा !"

"हम औरतें सांसारिक हैं। गृहस्थी की कमियों को नहीं सह सकतीं। मेरी एक बात तुम्हें रखनी ही होगी। मेरा एक पैतृक मकान है और कुछ रुपये भी जमा हैं। दुहाई है तुम्हारी, बार-बार दुहाई देती हूँ, मेरी बात रखो, मुझसे रुपये लेने में संकोच मत करो। जानती हूँ मैं, तुम्हें इसकी सख्त जरूरत है।"

"सख्त जरूरत पड़ने पर मैट्रिकुलेशन की नोट-बुक लिखने से लेकर मजदूरी तक खुली पड़ी है।"

"मैं मानती हूँ, अन्तू, मुझे अपने जोड़े हुए रुपये अब तक देश के काम में खर्च कर देने चाहिए थे। मगर रोजगार करने की शक्ति हम लोगों में कम होने के कारण ही संचय में हमारी अन्ध-आसक्ति होती है। डरपोक हैं हम।"

"यह तुम लोगों की सहजबुद्धि का उपदेश है। अभाव में स्त्रियों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।"

"हमारे घोंसले छोटे हैं, वहाँ छोटी-मोटी चीजें हम जमा करती रहती हैं। परन्तु वह सिर्फ जीने ही के लिए नहीं, बल्कि प्रेम की आवश्यकताएँ मिटाने के लिए भी। मेरा जो कुछ है, सब तुम्हारे ही लिए है—इस बात को अगर समझ सकीं, तो जी जाऊँगी मैं।"

"हरगिज नहीं समझूँगा उस बात को। आज तक स्त्रियों ने सेवा ही दी है और पुरुषों ने जुगाई है जीविका। इसके विपरीत होने से हमारा सिर नीचा होता है। जिस चाहना के लिए बिना संकोच के तुम्हारे सामने हाथ पसार सकता हूँ, उसकी उपेक्षा करके तुमने प्रण का बाँध खड़ा किया है। उस दिन नारायणी स्कूल का खाता लेकर तुम हिसाब मिला रही थीं। मैं पास जाकर बैठ गया, जैसे तूफान की चोट खाकर चील जमीन पर आ पड़ती है। चोट खाया हुआ घायल मन लेकर आया था। कर्तव्य की फालतू छाप लगी हुई चीजों पर औरतों की वैसी ही अटल भक्ति होती है जैसी पंडों के पैरों पर यात्री की, उससे छुड़ा लेना असम्भव है। मुँह उठाकर देखा तक नहीं! बैठे बैठे एकटक देखता रहा, जी चाहने लगा तुम्हारी उन सुकुमार उँगलियों से मेरे तन-मन पर स्पर्श-सुधा झर पड़े। तुम्हें जरा भी दरद न आया; कंजूस, इतना भी निकालकर न दे सकी। मन ही मन कहा, शायद और भी ज्यादा कीमत देनी पड़ेगी। किसी दिन जब फूटा सिर और खून से लथपथ देह लेकर जमीन पर गिर पड़ूँगा, तब उस घायल हृदय को तुम जतन से गोद में उठाकर रखोगी।"

एला की आँखें भर आईं, बोली—"उफ्, तुमसे जीत नहीं सकती, अन्तू! इतना भी बिना दिये न ले सके? छीन क्यों नहीं लिया मेरा रजिस्टर? तुम समझ नहीं पाते, तुम्हारा ही संकोच मुझे संकुचित कर देता है। अन्तू, तुम्हारा स्वभाव एक जगह औरतों से मिलता है। प्रबल इच्छा रहते हुए भी, उद्दाम भाव से उसकी माँग पेश करने में तुम्हारी रुचि तुम्हें रोकती है।"

"वंशगत धारणा है यह, बचपन ही से रक्त-मांस में समा चुकी है। बराबर सोचता आया हूँ, स्त्रियों के तन-मन में एक-शुचिता की मर्यादा मौजूद है, उनके शरीर के सम्मान की सशंकित चित्त से रक्षा करना हमारा वंश-परम्परागत अभ्यास है। मेरे कुंठित मन को जरा भी प्रश्रय देने के लिए तुम्हारा मन अगर कभी भी पसीजे, तो मेरी तरफ से शिक्षा माँगने की राह न देखा करो। मैंने सीखा नहीं जो उस तरह माँगना। भूख की सीमा नहीं, पर इससे पेटू नहीं बन सकता; मेरी प्रकृति में यह बात है ही नहीं।"

एला अतीन के पास और भी सटकर बैठ गई, अतीन का सिर अपनी छाती से लगाकर उसने अपना सिर भी झुका लिया। बीच बीच में आहिस्ते से उसके बालों में उँगलियाँ फेरने लगी। कुछ देर बाद अतीन ने सिर उठाया और एला के हाथ अपनी मुट्ठी में दबा लिये। कहने लगा—"जिस दिन मुकामा में जहाज पर सवार हुआ था, उस दिन दादी भाग्यदेवी ने अपने अदृश्य हाथों से जो मेरे कान मल दिये थे, उसे मैं समझ नहीं सका। उसके बाद से ही मेरा मन अपनी स्मृति के आकाश में केवल आकाश-कुसुम ही चयन करता फिरा है। उस दिन की बात तुम्हारे लिए पुरानी हो गई क्या?"

"जरा भी नहीं।"

"तो सुनो। नौकर मेरा भारी असबाब नीचे के डेक से लुढ़काकर ले गया था। मेरे पास रह गया था सिर्फ एक चमड़े का सूट-केस। मैं कुली के लिए इधर-उधर ताक रहा था। इतने में निहायत भलेमानस की तरह सहसा तुमने पास आकर पूछा, 'कुली चाहते हैं, क्या जरूरत है, मैं लिये चलती हूँ।'—'हें हें, करती क्या हैं' कहते कहते ही तुमने उठा लिया उसे। मेरी विपत्ति देखकर फिर तुम बोलीं, 'संकोच मालूम होता हो तो एक काम कीजिए, मेरा बक्स वह पड़ा है, आप उठा लीजिए, 'दोनों ऋण से उऋण हो जायँगे।'—उठाना पड़ा मुझे। मेरे सूट-केस से सात-गुना भारी होगा तुम्हारा बक्स। हैण्डिल पकड़कर दाहने-बायें हाथ बदलते हुए किसी कदर डगमगाता हुआ थर्ड कलास डब्बे तक पहुँचा और बक्स भीतर रखा। मेरा रेशमी कुरता पसीने से तर हो गया और तेजी से साँस चलने लगी,—तुम्हारे चेहरे पर था निस्तब्ध अट्टहास्य। हो सकता है कि करुणा कहीं किसी जगह छुपी थी और उसे प्रकट करना तुमने अकर्तव्य समझा हो। उस दिन मुझे आदमी बनाने की महान् जिम्मेवारी शायद तुम्हारे ही हाथ में थी।"

"छि-छि, मत कहो" मत कहो, सोचते हुए भी शरम आती है। क्या थी तब, कैसी बेवकूफ, कैसी विचित्र! तब तुम अपनी हँसी दबाये रखते थे, इसी से मैं इतनी सिर चढ़ गई थी। तुमसे सहा कैसे जाता था? स्त्रियों के बुद्धि होने की क्या कोई जरूरत ही नहीं?"

"हो चाहे न हो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। उस दिन जिस परिवेष्टन में तुम मुझे दिखाई दी थीं, वह तो हायर मैथ-मैटिक्स न था, न लॉजिक था। वह था मोह। शंकराचार्य जैसे महामल्ल भी उस पर मुद्गर मारकर कहीं से उसे दचका न सके। तब शाम हो रही थी, आकाश में क्षणिक मेघ अपनी नश्वर

विभूति दिखाने में तन्मय थे। गंगा का पानी लाल आभा लिये लहरें ले रहा था। उन दिन की वह छरछरी चंचल शीघ्रगामी देह, उस रंगीन प्रकाश की भूमिका में, हमेशा के लिए मेरे हृदय में अंकित होकर बस गई। क्या हुआ फिर? तुम्हारी बुलाहट गूँज उठी कानों में। मगर अब आ पहुँचा हूँ कहाँ? तुमसे कितनी दूर? तुम भी क्या जानती हो उसका सारा हाल?"

"मुझे जानने क्यों नहीं देते, अन्तू?"

"मनाही सुननी चाहिए तुम्हें। सिर्फ यही क्यों? क्या होगा सब बातें कहकर?—उजेला घट गया है—आओ, और भी पास आ जाओ। मेरी आँखें आज तुम्हारे छुट्टी के दरबार में आई हैं। सिर्फ एक तुम्हारे पास ही मेरी छुट्टी है। बहुत ही छोटा है उसका घेरा, सोने के पानी से रँगे हुए फ्रेम के समान। उसी में तसवीर को मढ़वा क्यों न लूँ? ये जो तुम्हारे दो-चार अशिष्ट बाल बिखरकर आँखों के ऊपर आ पड़े हैं, फुरतीले हाथों से जिन्हें उठा उठा देती हो; काली किनारी की टसर की साड़ी, कंधे पर ब्रोच नदारत, माथे का पल्ला पिन से बालों में अटका रहना, आँखों में क्लान्त व्यथा की छाया, ओंठों पर नम्र प्रार्थना का आभास; मानो चारों ओर से दिन का प्रकाश डूब रहा हो अन्तिम अस्पष्टता में;—यह जो देखा, यही आश्चर्यजनक सत्य है। इसके मानी क्या, किसी को समझाकर कह नहीं सकता—किसी एक अद्वितीय कवि के हाथ न लगने के कारण ही इसके अव्यक्त माधुर्य में इतना गहरा विषाद भरा है। इस छोटी-सी अपूर्व सुन्दर परिपूर्णता को बड़े नाम और बड़ी छायावाली विकृति चारों ओर से भृकुटि ताने घेरे हुए है।"

"क्या कह रहे हो, अन्तू!"

"बहुत-सा झूठ। याद है, मजूरों की बस्ती में मुझे घर लेने के लिए कहा था। तुम्हारे मन में तो था मेरे वंश के अभिमान

को धूल में मिला देना; पर तुम्हारे उस सुमहत् अध्यवसाय में मुझे मजा आने लगा। डेमोक्रैटिक पिकनिक शुरू कर दी। गाड़ीवानों के मुहल्ले में घर लेकर रहने लगा! उनसे भाई-चाचा का नाता जोड़कर चल पड़ा उनके बैल-भैंसों के साथ साथ। मगर उनसे भी छिपा न रहा, और न मुझसे ही, कि भट्ठी चढ़ने पर इन रिश्तों की छाप का टिकना मुश्किल है। अवश्य ही ऐसे महान् पुरुष मौजूद होंगे, जिनका स्वर सभी बाजों के साथ एक-सा बजा करता है, यहाँ तक कि धुनकी पर भी। हम उनकी नकल करते हैं तो सुर नहीं मिलता। देखा नहीं तुमने, अपने मुहल्ले के ईसा के शिष्य को, ब्रादर कहके चाहे जिसको छाती से लगा लेना उसके अनुष्ठान का एक अंग है। यह तो महात्मा ईसा का मजाक उड़ाना है।"

"क्या हुआ है तुम्हें, अन्तू! किस क्षोभ में आकर तुम ये सब बातें कह रहे हो? तुम क्या यह कहना चाहते हो कि भीतर से अरुचि को निकाल देने पर भी कर्तव्य को कर्तव्य नहीं माना जा सकता?"

"रुचि की बात नहीं, ऐली, स्वभाव की बात है। अत्यन्त अरुचि होने पर भी, श्रीकृष्ण ने अर्जुन से वीर का कर्तव्य करने के लिए ही कहा था; कुरुक्षेत्र में खेती करने के लिए एग्रिकलचरल इकॉनॉमिक्स की चर्चा करने को नहीं कहा था।"

"तुम होते, तो श्रीकृष्ण क्या कहते, अन्तू?"

"बहुत दिन पहले ही उन्होंने मेरे कान में कह रखा है। मेरे कान में कही हुई उनकी बात को मुँह से कहने का भार था तुम पर। गुरु जी ने सिर्फ इस बात को कहने के लिए कि बिना किसी पक्षपात के सभी का एक ही कर्तव्य है, कान पकड़कर इतनी कृत्रिमता पैदा की है। मैं तुम्हारे मुँह पर ही कहता हूँ, उनके जिस मुहल्ले में अहंकार के साथ नम्रता दिखाने जाती हो, वहाँ तुम्हारे

लिए भी जगह नहीं। देवी ! सभी देवी हो तुम लोग ! नकली देवी की कृत्रिम पोशाक है, स्त्रियों की और और पोशाकों की तरह, पुरुष दरजी की दूकान पर बनी हुई।"

"देखो अन्तू, आज तक मैं यह नहीं समझ सकी कि जो मार्ग तुम्हारा नहीं है, उस मार्ग से क्यों तुम जोर लगाकर लौट नहीं आते ?"

"तो कह दूँ। इस मार्ग पर कदम रखने के पहले बहुत-सी बातें मैं जानता न था, बहुत-सी बातें मैंने सोची तक नहीं। एक एक करके बहुत-से लड़कों को मैंने अपने आस-पास पाया, जो उमर में छोटे न होते तो उनके पैरों की धूल मैं अपने माथे से लगाता। मेरी आँखों के सामने इन लोगों ने कितना देखा है, कितना सहा है, कितना अपमान हुआ है उनका, ये सब असह्य भयङ्कर बातें कहीं भी प्रकट न होंगी। इसी की असह्य व्यथा ने मुझे पागल बना दिया था। बार-बार मैंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि भय से हार न मानूँगा, कष्टों से हार न मानूँगा, पत्थर की दीवार से सर टकरा-टकराकर मर जाऊँगा, तो भी चुटकियाँ बजा-बजाकर उपेक्षा करूँगा उस हृदयहीन दीवार की।"

"उसके बाद फिर क्या तुम्हारी राय बदल गई ?"

"सुनो मेरी बात। शक्तिशाली के विरुद्ध जो लड़ता है, वह उपाय-विहीन होने पर भी उसी शक्तिशाली के सामने खड़ा होता है; उससे उसके सम्मान की रक्षा होती है। उस सम्मान के अधिकार की मैंने कल्पना की थी। ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे, आँखों के सामने देखा गया—असाधारण उच्च विचार के लड़के धीरे-धीरे मनुष्यत्व खो रहे हैं। इतना बड़ा नुकसान और कुछ भी नहीं हो सकता। मैं निश्चित जानता था कि मेरी बात हँसी में उड़ा देंगे, व्यंग्य करेंगे, फिर भी उन लोगों से कहा मैंने, 'अन्याय में अन्यायकारी के समान हो जाना भी हमारे लिए हार ही है—पराजय के

पहले, मरने के पहले, हमें साबित कर जाना होगा कि हम उनसे मानव-धर्म में बड़े हैं, नहीं तो इतने बड़े जबरदस्त बलिष्ठ के साथ हार का खेल खेलना ही क्यों ? निर्बुद्धिता के आत्मघात के लिए ?—मेरी बात को उनमें से किसी ने समझा ही नहीं, सो बात नहीं। मगर कितनों ने ?"

"तभी उन लोगों को तुमने छोड़ क्यों नहीं दिया ?"

"कैसे छोड़ता ? तब चारों तरफ से दण्ड के निष्ठुर जाल में सब फँस चुके थे जो। उनका इतिहास मैंने देखा, समझ गया उनकी मर्मान्तिक वेदना को,—इसी लिए चाहे क्रोध करूँ या घृणा, फिर भी विपत्ति में फँसे हुओं को छोड़ न सका। परन्तु एक बात इस अनुभव से पूरी तरह समझ में आ गई कि शारीरिक बल में हम जिनके कतई बराबरी के नहीं हैं, उनके साथ देह के बूते पर मल्लयुद्ध करने की कोशिश करने से हमारी दुर्गति शोचनीय हो उठेगी। रोग सभी शरीर के लिए दुखदायक होता है; पर क्षीण शरीर के लिए तो वह घातक ही है। मनुष्यत्व का अपमान करके भी कुछ दिन के लिए जय-डंका बजाते हुए वे ही चल सकते हैं, जिनके बाहुबल हो; मगर हम नहीं चल सकते। इससे तो हम, नीचे से ऊपर तक, कलंक से काले होकर पराभव की अन्तिम सीमा में बदनामी के अँधेरे में समा जायँगे।"

"कुछ दिनों से इस भयंकर दुःखान्त का चेहरा मेरे सामने भी स्पष्ट होता जाता है, अन्तू ! गौरव का आह्वान पाकर मैदान में उत्तरी थीं, मगर अब तो दिनों-दिन लज्जा ही बढ़ती जाती है। अब हम क्या कर सकती हैं, बताओ मुझे।"

"सभी आदमियों के सामने धर्मक्षेत्र में धर्म-युद्ध है, और वहाँ है मृतो-वापि-तेन-लोकत्रयं-जितम्। परन्तु हम कुछ आदमियों के लिए इस यात्रा में उस क्षेत्र का मार्ग बन्द है। यहाँ का कर्मफल हमें यहीं बेबाक चुका जाना पड़ेगा।"

"सब समझ रही हूँ, फिर भी अन्तू, अपने देश के काम के बारे में कुछ दिनों से तुम ऐसे धिक्कार के साथ बात करते हो कि मुझे चोट पहुँचती है।"

"उसका कारण क्या है, इस बात को अभी न भी कहूँ तो कोई हर्ज नहीं, उसका समय बीत चुका।"

"फिर भी कहो।"

"मैं आज स्वीकार करूँगा तुम्हारे सामने, तुम लोग जिसे पेट्रियट या देशभक्त कहते हो, मैं वह देशभक्त नहीं हूँ। जो पेट्रियटिज्म से भी बड़ा है, उसे जो लोग सर्वोच्च नहीं मानते, उनका पेट्रियटिज्म मगर की पीठ पर चढ़कर पार होने की नाव है। झूठे आचरण, नीचता, आपस में अविश्वास, क्षमता पाने के लिए षड्यन्त्र, जासूसी मनोवृत्ति, ये सब आचरण उन्हें किसी दिन कीचड़ के नीचे तक घसीट ले जायेंगे। यह मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। इस गढ़े के भीतर की भद्दी दुनिया में दिन-रात झूठ की जहरीली हवा चल रही है; उसमें रहकर अपने स्वभाव से उस पौरुष की रक्षा हरगिज नहीं कर सकता, जिससे संसार में कोई बड़ा काम किया जा सकता है।"

"अच्छा अन्तू तुम जिसे आत्मघात कहते हो, वह क्या सिर्फ हमारे ही देश में है?"

"यह नहीं कहता। देश की आत्मा को मारकर देश के प्राण बचाये जा सकते हैं, इस भयङ्कर असत्य को आजकल संसार भर के राष्ट्रवादी पाशव-गर्जन के साथ घोषित करना चाहते हैं, उसका प्रतिवाद मेरे हृदय में असह्य आवेग से घुमड़-घुमड़ उठता है—इस बात को शायद सच्ची भाषा में भी कह सकता था, और वह, सुरङ्ग के भीतर दुबका-चोरी करके देशोद्धार की कोशिश करने की अपेक्षा, कहीं अधिक चिरस्थायी और बड़ी बात होती। परन्तु इस

जन्म में कहने का समय ही नहीं मिला। मेरी वेदना इसी से आज इतनी निष्ठुर हो उठी है।"

एला ने एक गहरी साँस ली, और बोली—"लौट आओ अन्तू!"

"अब कोई लौटने का रास्ता ही नहीं है।"

"क्यों नहीं है?"

"कुठौर अगर जा पड़ूँ, तो वहाँ भी जिम्मेवारी है अन्त तक।"

एला ने अतीन के गले से लिपटकर कहा—"लौट आओ, अन्तू! इतने वर्षों से जिस विश्वास से मैंने अपना घर बनाया था, उसकी भीत तुमने तोड़ दी है। आज मैं बहती हुई फूटी नाव को जकड़े हुए हूँ। मुझे भी उद्धार करके लेते चलो।—इस तरह चुपकी साधे बैठे मत रहो, बोलो अन्तू, बोलो। अभी तुम हुक्म दो, मैं तोड़ दूँगी प्रण। गलती की है मैंने। मुझे माफ करो।"

"कोई चारा नहीं।"

"क्यों नहीं चारा? जरूर है।"

"तीर लक्ष्यभ्रष्ट हो सकता है, पर तूण में वापस नहीं आ सकता।"

"मैं स्वयंवरा हूँ, मुझसे ब्याह करो अन्तू! अब और समय नष्ट मत करो—गान्धर्व-विवाह होने दो, मुझे सहधर्मिणी बनाकर ले जाओ अपने मार्ग पर।"

विपत्ति का मार्ग होता तो ले जाता साथ। मगर जहाँ धर्म-भ्रष्ट हुआ है, वहाँ तुम्हें सहधर्मिणी नहीं बनाना चाहता। जाने दो, जाने दो इन सब बातों को। इस जीवन की नाव डूबने के बाद कुछ सत्य अब भी बाकी है। उसी की बात सुनूँगा तुम्हारे मुँह से।"

"तो क्या कहूँ?"

"कहो, तुम मुझसे प्रेम करती हो।"

"हाँ, करती हूँ।"

"कहो, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, यह बात मैं जब नहीं रहूँगा तब भी तुम्हें याद रहेगी।"

एला निरुत्तर हो चुपचाप बैठी रही, आँसू गिरने लगे उसकी आँखों से। बहुत देर बाद उसने रुँधे हुए गले से कहा—"फिर कहती हूँ, अन्तू, कुछ लो मेरे हाथ से—लो मेरे गले के इस हार को।"

कहते हुए उसने हार उतारकर अतीन के पैरों पर रख दिया।

"हरगिज नहीं।"

"क्यों, इतने रूठते हो?"

"हाँ, रूठता हूँ। ऐसे दिन भी थे, तब अगर देतीं तो पहन लेता गले में—आज दे रही हो जेब में, गरीबी के गड्ढे में। भीख न लूँगा तुम्हारे हाथ से।"

एला अतीन के पैरों पर लोट गई, बोली—"बना लो, मुझे अपनी संगिनी बना लो।"

"लोभ न दिखाओ, एला! बहुत बार कह चुका हूँ, मेरा रास्ता तुम्हारा नहीं है।"

"तो वह रास्ता तुम्हारा भी नहीं है। लौटो, लौटो जल्दी।"

"रास्ता मेरा नहीं, मैं ही रास्ते का हूँ। गले की फाँस को गले का गहना कोई नहीं कहता।"

"अन्तू, तुम निश्चिन्त जानते हो, तुम्हारे चले जाने के बाद मैं एक क्षण भी न जीऊँगी। तुम्हारे सिवा और कोई मेरा नहीं है, इस बात पर अगर आज सन्देह भी करो, तो एकाग्र मन से मैं आशा करती हूँ कि मरने के बाद उस सन्देह को निर्मूल करने का कोई रास्ता भी कहीं होगा।"

सहसा अतीन उछलकर खड़ा हो गया। तीर के समान तीक्ष्ण सीटी का शब्द सुनाई दिया दूर से। चौंककर बोला—"चल दिया।"

एला लिपट गई उससे, बोली—"और जरा ठहरो।"

"नहीं"।

"कहाँ जा रहे हो?"

"कुछ नहीं जानता।"

एला अतीन के पैरों से लिपट गई, बोली—"मैं तुम्हारी सेविका हूँ, तुम्हारे चरणों की सेविका,—मुझे छोड़े मत जाओ, छोड़े मत जाओ।"

अतीन क्षण भर ठिठककर खड़ा रहा। दूसरी बार सीटी की आवाज सुनाई दी। अतीन गरजकर बोला—"छोड़ दो।"

और अपने को छुड़ाकर चल दिया।

शाम का अँधेरा बढ़ता जाता है। एला जमीन पर औंधी पड़ी है। उसका हृदय सूख गया, आँखों में आँसू तक नहीं। इतने में गम्भीर गले की आवाज सुनाई दी—"एला!"

एला चौंककर उठ बैठी। देखा, इलेक्ट्रिक टॉर्च हाथ में लिये इन्द्रनाथ सामने खड़े हैं। चट से उठ के खड़ी हो गई, बोली—"लौटा लाइए अन्तू को।"

"जाने दो उस बात को! यहाँ क्यों आई?"

"विपत्ति सिर पर है, जानकर ही आई हूँ।"

तीव्र भर्त्सना के स्वर में इन्द्रनाथ ने कहा—"तुम्हारी विपत्ति की बात कौन सोच रहा है? यहाँ की खबर तुम्हें किसने दी?"

"बटू ने।"

"फिर भी समझ में न आया उसका इरादा?"

"समझने की बुद्धि मुझमें नहीं थी। जी हाँफने लगा था।"

"तुम्हें मार सकता, तो अभी खतम कर देता। जाओ, घर लौट जाओ। टैक्सी खड़ी है बाहर।"

चौथा अध्याय

"अखिल, तू फिर आ गया—भाग आया बोर्डिंग से ! तुझसे किसी तरह पार पाना मुश्किल है। बार-बार कह दिया,—इस मकान में हरगिज मत आया कर। किसी दिन जान पर आ बीतेगी !"

अखिल ने इसका कुछ जवाब न देकर स्वर को कुछ धीमा करके कहा—"एक कोई दाढ़ीवाला पीछे से दीवार लाँघकर बगीचे में घुस आया है। इसी से मैंने तुम्हारे इस कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द कर दिया है।—देखो, पैरों की आहट सुनाई दे रही है।"

अखिल अपने चाकू का सबसे बड़ा और मोटा फल खोलकर खड़ा हो गया।

एला ने कहा—"छुरी तानने की जरूरत नहीं रे, वीर पुरुष ! ला, दे मुझे।"

एला ने उसके हाथ से चाकू छीन लिया।

जीने से आवाज आई—"कोई डर नहीं, मैं अन्तू हूँ।"

सुनते ही एला का चेहरा फक पड़ गया। बोली—"दरवाजा खोल दे।"

दरवाजा खोलकर अखिल ने पूछा—"वह दाढ़ीवाला कहाँ गया ?"

"दाढ़ी तो बगीचे में मिल जायगी, बाकी का आदमी यहीं मौजूद है। जाओ, दाढ़ी ढूँढ़ लाओ जाकर।"

अखिल चला गया।

एला पत्थर की मूर्ति की तरह क्षण भर एकटक खड़ी देखती रही। फिर बोली—"अन्तू, यह कैसी तुम्हारी शकल ?"

अतीन ने कहा—"मनोहर नहीं है।"

"तो क्या सचमुच ?"

"क्या सचमुच ?"

"सत्यानाशी रोग ने तुम्हें जकड़ लिया ?"

"नाना डाक्टरों का नाना मत है, विश्वास न करने से भी काम चल सकता है।"

"जरूर तुमने कुछ खाया-पीया नहीं है।"

"जाने दो उस बात को। समय नष्ट न करो।"

"क्यों आये, अन्तू, क्यों आये ? ये लोग जो तुम्हें पकड़ने की राह देख रहे हैं।"

"उन्हें निराश नहीं करना चाहता।"

अतीन का हाथ पकड़कर एला ने कहा—"क्यों आये तुम इस निश्चित विपत्ति में ? अब उपाय क्या ?"

"क्यों आया, इस बात को, ठीक जाने के पहले कहकर चला जाऊँगा। इस बीच में, जितनी देर तक हो सके, उस बात को भूले रहना चाहता हूँ। नीचे के दरवाजे सब बन्द किये आता हूँ।"

कुछ देर बाद फिर ऊपर आकर कहने लगा—"चलो छत पर। नीचे के बल्ब सब खोल लाया हूँ। डरो मत।"

दोनों छत पर पहुँचे, और जीने का दरवाजा बन्द कर लिया। अतीन बन्द दरवाजे से पीठ लगाकर बैठ गया, और एला उसके सामने बैठ गई।

"एला, मन को स्वाभाविक अवस्था में लाओ। जैसे कुछ हुआ ही न हो, समझ लो कि हम दोनों लंकाकाण्ड आरम्भ होने के पहले सुन्दरकाण्ड में हैं। तुम्हारे हाथ ऐसे बरफ-से ठंडे क्यों हो रहे हैं ? काँप रहे हैं जो ! लाओ, गरम कर दूँ।"

एला के दोनों हाथ लेकर अतीन ने अपने कुरते के नीचे छाती से लगा लिये। उस समय दूर के किसी मुहल्ले में ब्याह की नौबत बज रही थी।

"डर लगता है, एली?"

"डर किस बात का?"

"सब कुछ का। क्षण क्षण का।"

"डर तुम्हारे लिए है, अन्तू, और किसी बात का नहीं।"

अतीन ने कहा—"एली, कल्पना करने की कोशिश करो कि हम पचास या सौ वर्ष आगे की ऐसी ही किसी निस्तब्ध रात्रि में हैं। वर्तमान समय की चहारदीवारी बहुत ही संकीर्ण है, उसमें भय-चिन्ता, दुःख-कष्ट सभी कुछ अत्यन्त विशालता का रूप धारण करके दिखाई देते हैं। 'वर्तमान' इतने नीचे दरजे की चीज है कि उसमें 'छोटे मुँह बड़ी बात' के सिवा और कुछ नहीं। वह नकाब पहनकर डराता है हमें—जैसे हम क्षण भर की गोद में खेलते हुए बच्चे हों। मृत्यु उस नकाब को झटककर फेंक देती है। मृत्यु कभी अत्युक्ति नहीं करती। जिस चीज को बहुत ज्यादा चाहा था, उस पर इसी वर्तमान की धोखेबाज कलम ने कीमत की मोटी रकम लिख रखी थी; और जिस चीज को बहुत जबरदस्त रूप में खो दिया है, उस क्षणिक पर स्याही ने लेबिल चिपकाकर लिख दिया है असीम दुःख! झूठी बात है यह! जीवन ही जालसाज है, वह अनन्तकाल के हस्ताक्षरों को जाल करके चलाना चाहता है। मौत आकर हँसती है, और जाली कागजातों को लुप्त कर देती है। उसकी वह हँसी निष्ठुर हँसी नहीं, व्यंग्य की हँसी नहीं, बल्कि शिव की हँसी की तरह वह मोहरात्रि के अवसान में शान्त और सुन्दर हँसी है। एली, रात को अकेले बैठकर कभी तुमने मृत्यु की स्निग्ध

और सुगम्भीर मुक्ति का अनुभव किया है, जिसमें चिर काल की क्षमा रहती है ?"

"तुम्हारी तरह बड़े रूप में देखने की शक्ति नहीं है मुझमें, अन्तू,—फिर भी तुम लोगों की बात याद करके मन जब उद्वेग से भर जाता है, तब इस बात को बहुत ही निश्चित रूप में अनुभव करने की कोशिश करती हूँ कि मरना सहज है।"

"डरपोक हो, मौत को भागने का रास्ता क्यों समझ रही हो ? सबसे बढ़कर अगर कोई निश्चित चीज है, तो वह मृत्यु ही है,—जीवन समस्त गति-स्रोतों का चरम समुद्र है, सम्पूर्ण सत्य-असत्य और बुरे-भले की अन्तिम बूँद तक का समन्वय हुआ है उसमें। आज की इस रात में, अभी, हम दोनों ही उस विराट् के प्रसारित बाहु-वेष्टन में हैं—याद हैं तुम्हें इब्सन की वे लाइनें :—

Upwards
Towards the peaks,
Towards the stars,
Towards the vast silence."*

एला अतीन का हाथ अपनी गोद में लिये चुपचाप स्तब्ध होकर बैठी रही। सहसा अतीन हँस उठा। बोला—"पीछे मौत का काला परदा स्थिर टँगा हुआ है असीम में, उसी पर जीवन का कौतुक-नाट्य नाचता चला जा रहा है अन्तिम अंक की ओर। उसी का एक दृश्य देख लो आज गौर से। आज से तीन वर्ष पहले इसी छत पर तुमने मेरे जन्म-दिन का उत्सव मनाया था, याद है ?"

---

*हिन्दी में—"ऊपर की ओर
शिखरों की दिशा में,
नक्षत्रों की तरफ,
विराट् निस्तब्धता की ओर।"

"खूब याद है।"

"तुम्हारे भक्त लड़कों का पूरा जमघट था। भोज के आयोजन में कोई खास धूमधाम नहीं थी। चिउड़ा भूने थे और साथ में थी उबाली हुई कच्ची मटर, ऊपर से नमक-मिर्च भुरक दी गई थी; अंडे के बड़े भी थे,—याद है—सबने मिलकर खाया था छीन-झपटकर। सहसा मोतीलाल ने हाथ-पैर फटकारते हुए शुरू कर दिया—'आज नवयुग में अतीन बाबू के नवजन्म का दिन है'—मैंने तड़ाक से उठकर उसका मुँह बन्द कर दिया; कहा, अगर लेक्चर शुरू करोगे तो अभी तुम्हारे पुराने जन्म का दिन यहीं खतम कर दूँगा। बटू ने कहा, 'छि छि अतीन बाबू, भाषण की भ्रूणहत्या?'—नवयुग, नवजन्म, मृत्यु का तोरण आदि उनके बँधे बोल सुनकर मुझे शरम आती है। उन लोगों ने मेरे मन पर अपने गुट का रंग चढ़ाने के लिए जी-जान से कोशिश की है,—आखिर रंग चढ़ा ही न सके।"

"अन्तू, निर्बोध हूँ मैं; मैंने ही यह सोचा था कि वर्दी पहना-कर तुम्हें अपने दल के पियादों में मिला लूँगी।"

"इसी से मुझे दिखा-दिखाकर तुम उनके साथ घुल-मिलकर बहनापा निभाया करती थीं। सोचा होगा कि मेरे सुधार के लिए कुछ ईर्ष्या की भी जरूरत है! स्नेह-जतन, कुशल-सम्भाषण, विशेष मन्त्रणा, अनावश्यक उद्वेग आदि को तुमने बिसाती की रंग-बिरंगी चीजों की तरह उनके सामने सजा रखा था। आज भी तुम्हारे उस करुण प्रश्न की भनक मेरे कानों में गूँज रही है, 'नन्दकुमार, तुम्हारे चेहरे पर सुर्खी क्यों झलक रही है?' बेचारा भलामानस था, सत्य के खातिर सिर-दर्द को इन्कार करने के पहले ही, माथे पर भीगे लत्ते की पट्टी आ पहुँची। मैं मुग्ध हो जाता, मगर फिर भी समझ जाता कि तुम्हारा यह अति का 'बहनजीपन' अति

पवित्र भारतवर्ष की खास फरमाइशी चीज है। इस चरम आदर्श स्वदेशी 'बहनजी-वृत्ति को' मैं ताड़ लेता।"

"ओह, चुप रहो, चुप रहो अन्तू !"

"बहुत-सी फालतू चीजों की भरमार थी उन दिनों तुममें, बहुत-सा हास्यजनक ढोंग था—यह बात माननी ही पड़ेगी।"

"मानती हूँ, मानती हूँ, हजार बार मानती हूँ। तुम्हीं ने उन सब को एकदम रफा कर दिया है। तो फिर आज क्यों इस तरह निष्ठुर होकर कड़ुई-कड़ुई सुना रहे हो ?"

"किस मनस्ताप से कह रहा हूँ, सो तो सुन लो। जीविका से भ्रष्ट किया है, इसलिए उस दिन तुम मुझसे माफी माँग रही थी। यथार्थ जीवन के पथ से भ्रष्ट हुआ, और उस सर्वनाश के बदले जो कुछ तुमसे दावा कर सकता था, वह भी पूरा नहीं हुआ। मैंने तोड़ डाला अपने स्वभाव को, और कुसंस्कारों से अन्धी तुम, अपने प्रण को भी न तोड़ सकीं, जिसमें सत्य न था—उसके लिए माफी माँगना कौन-सी विशेषता रखता है ? मैं जानता हूँ, तुम क्या सोच रही हो, कैसे इतना सम्भव हुआ ?"

"हाँ अन्तू, मेरा अचम्भा किसी भी तरह दूर नहीं होता—मैं नहीं जानती, मुझमें ऐसी कौन सी शक्ति थी ?"

"तुम कैसे जानोगी ? तुम लोगों की शक्ति तुम्हारी निजी शक्ति नहीं है, वह महामाया की है। कैसा आश्चर्यजनक स्वर है तुम्हारे कण्ठ में, मेरे मन के असीम आकाश में वह ध्वनि की नीहारिका छा देता है। और तुम्हारे यह हाथ, ये उँगलियाँ, सत्य-असत्य सब कुछ पर परशमणि छुआ सकती हैं। मालूम नहीं, किस मोह के वेग से, धिक्कार देते देते ही स्खलित जीवन के असम्मान को अपना लिया ! ऐसी विपत्ति की बातें इतिहास में पढ़ी हैं, मगर यह तो सोच ही नहीं सकता था कि मुझ जैसे बुद्धि-

अभिमानी के भी कभी ऐसी दुघटना हो सकती है। अब जाल तोड़ने का समय आ गया, इसलिए आज तुम्हें सच्ची बातें सुनाऊँगा, फिर चाहे वे कितनी ही कठोर क्यों न हों ?"

"कहो, कहो, जो कहना है कह डालो। दया मत करना मुझ पर। मैं निर्मम हूँ, निर्जीव हूँ, मूढ़ हूँ मैं—तुम्हें पहचानने की शक्ति मुझमें कभी भी किसी समय न थी। जो अतुलनीय था, वही आया था हाथ बढ़ाकर मेरे सामने, अयोग्य हूँ मैं, मूल्य न दे सकी। बड़े भाग्य का धन जीवन भर के लिए चला गया हाथ से। इससे भी बढ़कर कड़ी सजा अगर हो, तो दो, वही सजा दो मुझे।"

"रहने दो, रहने दो, सजा की बात मत करो। क्षमा ही करूँगा मैं। मृत्यु जैसी क्षमा करती है, वैसी ही असीम क्षमा। इसीलिए तो आज आया हूँ।"

"इसीलिए ?"

"हाँ, सिर्फ इसीलिए।"

"क्षमा न करते तो न सही; पर क्यों आये तुम इस तरह आग में कूदने ? जानती हूँ जानती हूँ मैं, जीने की इच्छा नहीं है तुम्हें। अगर यही बात है, तो अपने यह बचे हुए कुछ दिन मुझे दो, दो मुझे अपनी सेवा करने का अन्तिम अधिकार। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।"

"क्या होगा सेवा का! फूटे जीवन के घड़े में उड़ेलोगी सुधा! तुम नहीं जानतीं, कैसा असह्य क्षोभ है मेरा! सेवा-शुश्रूषा से उसका क्या कर सकती हो, जिस आदमी ने अपना सत्य खो दिया हो!"

"सत्य नहीं खोया अन्तू! सत्य तुम्हारे हृदय में अक्षुण्ण बना हुआ है।"

"खो चुका, खो चुका।"

"न कहो, न कहो ऐसी बात।"

"मैं क्या हूँ, अगर इस बात को जान सकतीं, तो तुम सिर से लेकर पैर तक सिहर उठतीं।"

"अन्तू, आत्म-निन्दा को बढ़ा रहे हो तुम अपनी कल्पना से। निष्काम भाव से जो कुछ किया है, उसका कलंक हरगिज तुम्हारे स्वभाव पर नहीं लग सकता।

"स्वभाव की ही हत्या कर डाली है मैंने, सब हत्याओं से बढ़कर पाप है यह। किसी भी अहित को समूल नष्ट नहीं कर सका, जड़-मूल से सिर्फ अपने को ही मारा है। उसी पाप से, आज तुमको हाथ में पाकर भी तुम्हारे साथ अपने को मिला नहीं सकता। पाणिग्रहण! इन्हीं हाथों को लेकर! मगर क्यों ये सब बातें! इन सारे काले दागों को मिटा देगा यमकन्या का कालापानी, उसी के किनारे आकर बैठा हूँ आज। आज हँसते हुए कह देना चाहिए जितनी भी हलकी बातें हैं। उस जन्म दिन के इतिहास को पहले खतम कर लूँ। क्यों एली?"

अन्तू, मन बहुत चंचल है, ध्यान नहीं दे पाती।"

"हम दोनों के जीवन में ध्यान देने लायक जो कुछ भी बाकी बचा है, वह सिर्फ इन्हीं थोड़े से इने-गिने हलके दिनों में है। भूलने लायक भारी भारी दिन ही तो बहुत ज्यादा हैं।"

"अच्छा, सुनाओ।"

"जन्म-दिन का खाना-पीना हो गया। अचानक नीरद को शौक चर्राया, 'पलासी का युद्ध' पढ़ेगा। उठ के खड़ा हो गया, हाथ फैला-फैलाकर गिरीश घोष की शैली में कहने लगा—

कहाँ चली, देखो इधर सहस्र किरण,
एक बार देखो भला, ओ दिनकर।—

नीरद आदमी अच्छा है, बहुत ही सीधा-सादा, परन्तु निर्दय है उसकी स्मरण-शक्ति। सभा भंग करने के लिए जब मेरा मन व्याकुल हो रहा था, तब उन लोगों ने भवेश से गाने के लिए अनुरोध किया। भवेश ने कहा, बिना हारमोनियम के असम्भव है। तुम्हारे घर पर वह पाप था नहीं। बला टली। बड़ी आशा से सोच रहा था कि अब उपसंहार की पारी आई, इतने में सतू ने खामख्वाह बहस छेड़ दी—आदमी जन्म-दिन में पैदा होता है या जन्म-तिथि में? बहुत रोका, पर वह रुका ही नहीं। बहस में देशाभिमान की गन्ध आने लगी, गले की आवाज में तेजी आ गई,—बन्धु-विच्छेद तक की नौबत आ पहुँची। बड़ा गुस्सा आया तुम पर। मेरे जन्म-दिन का महज एक बहाना था, महान् लक्ष्य था सहकर्मी भाइयों को इकट्ठा करना।"

"कौन सा बहाना था और कौन सा लक्ष्य, बाहर से इसका विचार मत करो, अन्तू। दण्ड के योग्य मैं जरूर हूँ, पर अनुचित दण्ड मत दो। याद नहीं तुम्हें, उसी जन्म-दिन में ही तो अतीन्द्र बाबू ने मेरे मुँह से 'अन्तू' नाम पाया था? यह कोई मामूली-सी बात नहीं है। अपने अन्तू नाम का इतिहास तो बताओ, सुनूँ।"

"हाँ सखि, श्रवण करो। तब मेरी उमर चार पाँच साल की होगी, देह का ठिगना था, मुँह में बोल न था, सुना है कि आँखों की चितवन में बेवकूफी साफ झलका करती थी। ताऊजी पछाँह से आये, तो पहले-पहल उन्होंने मुझे देखा। गोद में उठा लिया, बोले—इस बालखिल्य का नाम अतीन्द्र किसने रखा है? अतिशयोक्ति अलंकार है, इसका नाम रखो अनतीन्द्र। वह अनति शब्द स्नेह के कंठ में पड़कर अन्तू हो गया। तुम्हारे सामने भी एक दिन अति बन गया था अनति, अपना सम्मान मैंने अपनी तबीयत से खोया है।"

सहसा अतीन चौंककर ठिठक गया। बोला—'पैरों की आहट सी मालूम होती है।"

एला ने कहा—"अखिल है।"

आवाज आई—"जीजी रानी!"

जीने का दरवाजा खोलकर एला ने पूछा—"क्या है?"

अखिल ने कहा—"खाने को।"

घर में रसोई का कोई इन्तजाम नहीं। पास के देशी रेस्तोराँ से खाना आया करता है।

एला ने कहा—"अन्तू, चलो खाने।"

"खाने-पीने की बात न करो। भूखे मरने में आदमी को बहुत दिन लगते हैं। नहीं तो भारतवर्ष अब तक न टिकता। भाई अखिल, अब नाराजी न रखना मन में। मेरा हिस्सा तुम्हीं खा लो। उसके बाद पलायनेन समापयेत्—भागना, जहाँ तक बने।"

अखिल चला गया।

दोनों फिर अपनी-अपनी जगह पर बैठ गये। अतीन ने फिर कहना शुरू किया।

"उस दिन का जन्म-दिन चलने लगा तेज रफ्तार से, किसी ने उठने का नाम तक नहीं लिया। मैं बार बार घड़ी देख रहा था, मगर रतौंधी के मारे सब इशारा क्यों समझने लगे। अन्त में तुम्हीं से मैंने कहा—जल्दी सो जाना चाहिए तुम्हें, हाल ही में इन्फ्लुएंजा से उठी हो। प्रश्न उठा, 'कितने बजे हैं?' उत्तर दिया गया साढ़े दस। सभा भंग होने के कुछ लक्षण दिखाई दिये। बटू ने कहा, 'आप तो बैठे ही रह गये अतीन बाबू? चलिए साथ ही साथ चलें।' कहाँ? तो भंगियों के मुहल्ले में; अचानक पहुँचकर उनका शराब पीना बन्द करना होगा। मेरे तो नीचे से लेकर ऊपर तक आग लग गई। कहा, शराब तो बन्द कर दोगे, पर उसके बदले में दोगे क्या? विषय कोई ऐसा न था, जिस पर आपे से बाहर होने की

जरूरत हो। नतीजा यह हुआ कि जो उठ के जा रहे थे, वे भी रुक गये। शुरू हुआ, 'क्या आप यह कहना चाहते हैं—'मैंने तुरन्त ही तीखे स्वर में कहा—कुछ नहीं कहना चाहता। इतना तीखापन भी ठीक न जँचा। आवाज भारी करके कनखियों से तुम्हारी तरफ देखकर कहा—तो अब चलता हूँ। दुमँजले पर तुम्हारे कमरे के सामने आते ही पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सूझ की तारीफ करूँगा, बुक-पाकेट पर हाथ मारकर बोला, फाउन्टेन-पेन शायद छूट गई! बटू ने कहा, 'मैं ढूँढ़े लाता हूँ'—कहकर तुरन्त ही चला गया छत पर। पीछे-पीछे मैं भी दौड़ा। कुछ देर तक ढूँढ़ने का बहाना करके बटू ने मुसकरा कर कहा, 'देखिए तो, शायद आपके जेब में ही होगी।' मैं तो जानता ही था कि फाउन्टेन-पेन की खोज के लिए भौगोलिक अनुसन्धान करने की जरूरत है अपने ही घर पर। साफ कहना पड़ा, एला बहन जी से कुछ खास बात करनी है। बटू ने कहा, 'अच्छी बात है, मैं बैठता हूँ नीचे जाकर।' मैंने कहा, बैठने की जरूरत नहीं, जाओ तुम। बटू ने मुसकराते हुए कहा, 'नाराज क्यों होते हैं अतीन बाबू, मैं जाता हूँ'।"

फिर पैरों की आहट सुनकर अतीन चौंक उठा। अखिल छत पर आया। बोला—"एक आदमी ने यह रुक्का दिया है अतीन बाबू के लिए। उसे सड़क पर खड़ा कर आया हूँ।"

एला की छाती धक-से हो उठी, बोली—"कौन आया?"

अतीन ने कहा—"बाबू को भीतर ले आओ न।"

अखिल ने जोर के साथ कहा—"नहीं, हरगिज नहीं।"

अतीन ने कहा—"डर की कोई बात नहीं, उन्हें तुम पहचानते हो; बहुत मरतबा देखा है।"

"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

"खूब पहचानते हो। मैं कहता हूँ न, डरो मत, मैं मौजूद हूँ।"

एला ने कहा—"अखिल, जा तू, झूठमूठ को डरे मत।"

अखिल चला गया।

एला ने पूछा—"बटू आया है क्या ?"

"नहीं, बटू नहीं।"

"बताओ न, कौन है। मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"जाने दो इस बात को, जो कह रहा था, उसे कहने दो।"

"अन्तू, किसी भी तरह चित्त ठिकाने नहीं रहा।"

"एला, खतम कर लेने दो मुझे अपनी कहानी। ज्यादा देर नहीं लगेगी।—तुम चली आईं छत पर। रजनीगन्धा की मृदु गन्ध से मन विह्वल हो उठा। फूलों का गुच्छा तुमने सबसे छिपाकर रख लिया था, अकेले में मेरे हाथ में देने के लिए। हम दोनों के सम्बन्ध के क्षेत्र में अन्तू की जीवन-लीला इन्हीं लज्जालु फूलों की गुप्त अभ्यर्थना में शुरू हुई। उसके बाद से अतीन्द्रनाथ की विद्याबुद्धि और गम्भीरता धीरे-धीरे अतलस्पर्श आत्मविस्मृति में जाकर बिला गई। उसी दिन पहले-पहल तुमने मेरे गले में बाँह डालकर कहा था—'यह लो अपने जन्म-दिन का उपहार!' वही मिला था प्रथम चुम्बन। आज दावा करने आया हूँ अन्तिम चुम्बन का।"

अखिल ने आकर कहा—"उसने तो दरवाजे पर धक्के मारना शुरू कर दिया है। तोड़ेगा मालूम होता है। कहता है, जरूरी काम है।"

"डरो मत अखिल, दरवाजा तोड़ने से पहले ही उसे ठंडा कर दूँगा। बाबू साहब को उसी जगह अनाथ छोड़कर तुम भाग जाओ और कहीं। मैं हूँ यहाँ तुम्हारी जीजी रानी की रखवाली करने को।"

एला ने अखिल को छाती से लगाकर उसकी ठोड़ी चूमकर कहा—"राजा भैया मेरा, राजा बेटा है न तू, भैया है न, जा

चला जा। तेरे लिए कुछ नोट मेरे आँचल में बँधे हैं, इन्हें ले, जीजी की असीस है यह। मेरे पाँव छूकर बोल—अभी तू चला जायगा, देरी न करेगा।"

अतीन ने कहा—"अखिल, मेरी एक सलाह तुम्हें सुननी ही होगी। अगर तुमसे कभी कोई पूछे, तो तुम सच्ची सच्ची बात बता देना। कहना, रात के ग्यारह बजे मैंने ही तुम्हें जबरदस्ती घर से निकाल दिया है। चलो, अपनी बात को मैं सच्ची कर आऊँ।"

एला ने फिर एक बार अखिल को अपने पास खींच लिया, बोली—"मेरी फिकर मत करना भैया! तेरे अन्तू-भैया हैं ही, डर की कोई बात नहीं।"

अखिल का हाथ पकड़कर अतीन जब ले जाने लगा, तो एला ने कहा—"मैं भी चलती हूँ तुम्हारे साथ, अन्तू।"

आदेश के स्वर में अतीन ने कहा—"नहीं, हरगिज नहीं।"

छत की मुँडेर पर छाती दबाये एला चुपचाप खड़ी रही—भीतर से रुलाई आकर कंठ में घुमड़ने लगी, समझ गई कि आज रात को हमेशा के लिए अखिल उसके पास से चला गया।

अतीन लौट आया। एला ने पूछा—"क्या हुआ, अन्तू?"

अतीन ने कहा—"अखिल चला गया। भीतर से दरवाजा बन्द कर दिया है।"

"और वह आदमी?"

"उसे भी छोड़ दिया। वह बैठा बैठा सोच रहा था, काम से जी चुराकर मैं शायद बातें ही करता रहूँगा। जैसे कोई एक नया 'अलिफ-लैला' शुरू हुआ हो। और असल में है भी वही, सबका सब उपन्यास तो है ही, बिलकुल ऊटपटाँग किस्से हैं सब। डर लग रहा है, एला? मुझसे डरती नहीं तुम?"

"तुमसे डर, क्या कह रहे हो !"

"क्या नहीं कर सकता मैं ! पतन की सीमा तक आ पहुँचा हूँ मैं। उस दिन हमारा दल एक अनाथ विधवा का सर्वस्व लूट लाया है। मन्मथ था बुढ़िया का जान-पहचान का गाँव का आदमी,—खबर देकर रास्ता दिखा के वही ले गया था सबको। छद्मवेश में भी विधवा ने उसे पहचान लिया, बोली—मन्नू, बेटा तू ऐसा काम कैसे कर सका ? उसके बाद बुढ़िया को जीने भी न दिया। जिसे हम देश की आवश्यकता कहते हैं, उसी आत्म-धर्म-नाशक आवश्यकता के लिए इन्हीं हाथों से वे रुपये यथास्थान पहुँचे हैं। अपना उपवास तोड़ा है उन्हीं रुपयों में से। इतने दिनों बाद असली दागी बना हूँ चोरी के कलंक से,—चोरी का माल छुआ है, उसका भोग किया है। चोर अतीन्द्र के नाम का बटू ने भंडाफोड़ कर दिया है। कहीं प्रमाणों की कमी से सजा न हो या कम सजा हो, इस ख्याल से उसने पुलिस-सुपरिन्टेन्डेन्ट की मार्फत कमिश्नर से यह हुक्म मँगाने का मसविदा बाँध रखा है कि मुकदमा अँगरेज मजिस्ट्रेट की इजलास में न दायर होकर देशी मजिस्ट्रेट की इजलास में खड़ा हो। वह निश्चित जानता है कि मैं कल पकड़ा जाऊँगा ही। इस बीच में डरो मत मुझसे, मैं खुद डरता हूँ अपनी मृत आत्मा के काले भूत से। आज तुम्हारे घर में और कोई नहीं है।"

"क्यों, तुम हो तो।"

"मेरे हाथ से तुम्हें बचायेगा कौन ?"

"न बचाये तो क्या।"

"तुम्हारी ही अपनी मण्डली में किसी दिन एला जीजी के जो देश-भाई थे—भैया-दूज को जिनके माथे पर हर साल तिलक लगाया है तुमने—उन्हीं में चर्चा हो रही है कि तुम्हारा जीवित रहना ठीक नहीं।"

"उनसे बढ़कर ज्यादा अपराध मैंने क्या किया है ?"

"बहुत-सी बातें जानती हो तुम, बहुतों के नाम-धाम मालूम हैं तुम्हें। बहुत सताई जाने पर उगल जो दोगी सब।"

"हरगिज नहीं।"

"कैसे कहूँ कि जो आदमी अभी आया था, वह यही हुक्म लेकर नहीं आया ? हुक्म का जोर कितना है, यह तो जानती हो तुम ?"

एला चौंक उठी, बोली—"सच कह रहे हो अन्तू, सच है यह ?"

"एक खबर मिली है हमें।"

"क्या खबर ?"

"आज पौ फटने के पहले ही पुलिस आयेगी तुम्हें पकड़ने।"

"मैं निश्चित जानती थी कि एक दिन पुलिस मुझे पकड़ने आयेगी।"

"कैसे जाना तुमने ?"

"कल बटू की चिट्ठी मिली थी, उसने खबर दी थी, पुलिस मुझे पकड़ेगी, लिखा था—अब भी वह मुझे बचा सकता है।"

"कैसे ?"

"कहता है, अगर मैं उससे ब्याह कर लूँ तो वह मेरी जमानत देकर मेरी जिम्मेदारी अपने सर ले लेगा।

अतीन का चेहरा काला पड़ गया, पूछा—"क्या जवाब दिया तुमने ?"

एला ने कहा—"मैंने उस चिट्ठी पर ही सिर्फ लिख दिया था, नीच पिशाच। और कुछ नहीं।"

"मालूम हुआ है, वह बटू ही आयेगा कल पुलिस के साथ। तुम्हारी सम्मति मिलते ही वह शेर से निपट कर तुम्हें मगर के गड्ढे में शरण देने के हितव्रत में कमर बाँधकर जुट पड़ेगा। उसका हृदय कोमल है।"

एला ने अतीन के पाँव पकड़कर कहा—"मार डालो मुझे अन्तू, अपने हाथों से मारो। इससे बढ़कर सौभाग्य और कुछ नहीं हो सकता।" कहते कहते उठ खड़ी हुई, और अतीन का बारबार चुम्बन लेती हुई बोली—"लो, अब मारो।" कुरती फाड़कर, छाती खोल के तैयार हो गई मरने के लिए।

अतीन पत्थर की मूर्ति की तरह कठोर होकर खड़ा रहा।

एला ने कहा—"जरा भी सोचो मत, अन्तू। मैं जो तुम्हारी हूँ, बिलकुल ही तुम्हारी हूँ—मरने पर भी तुम्हारी हूँ। लो मुझे, अंगीकार करो। गन्दे हाथ न लगने देना इस देह पर, मेरी यह देह तुम्हारी ही है।"

अतीन ने कठोर स्वर से कहा—"जाओ" अभी सोने जाओ; आज्ञा देता हूँ, सोने जाओ।"

अतीन को छाती से चिपटाकर एला कहने लगी—"अन्तू, अन्तू मेरे, मेरे राजा, मेर देवता, मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ—आज तक पूरी तरह जता न सकी। उसी प्यार की दुहाई है, मारो, मार दो मुझे।"

अतीन एला का हाथ पकड़कर जबरदस्ती उसे सोने के कमरे में खींच ले गया, बोला—"सोओ, अभी इसी वक्त सोओ! सोओ।"

"नींद नहीं आयेगी।"

"नींद की दवा है मेरे हाथ में।"

"कोई जरूरत नहीं, अन्तू। मेरे चैतन्य का अन्तिम क्षण तक तुम ही लो। क्लोरोफार्म लाये हो? फेंक दो उसे। डरपोक नहीं हूँ मैं; जागती हुई अपने होश में ही तुम्हारी गोद में मर सकूँ, यही करो। अन्तिम चुंबन आज अनन्त हुआ! अन्तू! अन्तू!"

इतने में दूर से सीटी की आवाज आई।